आचार्य महाश्रमण

अणुव्रत के ११ नियम

आचार्य महाश्रमण

जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं

संपादक : साध्वी सुमतिप्रभा

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : जुलाई २०१४

मूल्य : ३०/- (तीस रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

अर्हम्

अणुव्रत आन्दोलन गुरुदेव तुलसी का महान् अवदान है। अणुव्रत की आचारसंहिता के ग्यारह नियम प्रसिद्ध हैं। मैंने उन नियमों को विश्लेषित करने का कुछ प्रयास किया। साध्वी सुमतिप्रभा ने उसको सुन्दर आकार देने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक से पाठक को अणुव्रत के बारे में अवबोध मिलेगा तो मेरा श्रम सार्थक हो सकेगा।

आचार्य महाश्रमण

अणुव्रत आचार-संहिता

१. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।

- आत्म-हत्या नहीं करूंगा।
- भ्रूण हत्या नहीं करूंगा।

२. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।

- आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
- विश्वशांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।

३. मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

४. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।

- जाति, रंग आदि के आधार पर किसी को उच्च-निम्न नहीं मानूंगा।
- अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

५. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।

- साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।

६. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।

- अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
- छलपूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

७. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।

८. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

९. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

१०. मैं व्यसनमुक्त जीवन जीऊंगा।

- मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि तथा मांस, अण्डा, मछली आदि मांसाहार का सेवन नहीं करूंगा।

११. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।

- हरे-भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
- पानी, बिजली आदि का अपव्यय नहीं करूंगा।

अणुव्रती बनो

आदमी के जीवन में तपस्या और संयम—दोनों का महत्त्व है। जिस आदमी की जीवनशैली संयम से प्रभावित होती है, उसके जीवन में धार्मिकता आई है, ऐसा मानना चाहिए। कुछ-कुछ आत्माएं ऐसी होती हैं, जो साधुत्व को स्वीकार कर लेती हैं। बहुत-सी आत्माएं ऐसी होती हैं, जो साधुत्व को स्वीकार नहीं कर पाती हैं। एक महाव्रत का मार्ग है, दूसरा अव्रत का मार्ग है। बीच का एक तीसरा यानी मध्यम मार्ग और बताया गया, वह है अणुव्रत का मार्ग। परमपूज्य गुरुदेव तुलसी ने २ मार्च १९४९ को सरदारशहर में अणुव्रत आंदोलन का शुभारम्भ किया। इसकी एक आचारसंहिता भी निर्धारित की गई। अणुव्रत का आधारभूत तत्त्व है आत्मानुशासन। यह एक धर्म है, सम्प्रदाय नहीं। किसी भी धर्म-सम्प्रदाय में विश्वास रखने वाला व्यक्ति उसकी सदस्यता को सुरक्षित रखते हुए अणुव्रत की आचारसंहिता को स्वीकार कर सकता है।

भारत में विभिन्न धर्म-संप्रदाय हैं। यहां आस्तिक विचारधारा को मानने वाले लोग मिलते हैं तो नास्तिक विचारधारा के समर्थक भी मिल सकते हैं। आत्मा, कर्म, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले लोग हैं तो इनको न मानने वाले लोग भी दुनिया में हैं। अणुव्रत की आचारसंहिता ऐसी है, जो आस्तिक आदमी के लिए भी उपयोगी है और मेरा चिंतन है कि नास्तिक आदमी के लिए भी उपयोगी है। यदि कोई मुझसे पूछे कि मैं नास्तिक आदमी हूं। स्वर्ग-नरक, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आत्मा, कर्म, पुण्य-पाप को मैं नहीं मानता। ऐसी स्थिति में मैं अणुव्रती बन सकता हूं क्या? मैं उसे परामर्श देना चाहूंगा—'भाई! तुम आस्तिक हो या नास्तिक, यह अलग मुद्दा है। तुम अपने वर्तमान जीवन को मानते हो और उसे बेहतर बनाना चाहते हो, अच्छा इंसान बनना चाहते हो तो अणुव्रत को अपना सकते हो।'

अणुव्रत की आचारसंहिता जैनों के लिए उपयोगी है, सनातनी के लिए भी उपयोगी है, मुसलमान के लिए भी उपयोगी है। जैन-अजैन कोई भी हो, हर गृहस्थ के लिए उपयोगी है। यह आचारसंहिता मानवीय है यानी मानव (गृहस्थ) मात्र के लिए है। वह कुछ अंशों में सुसाध्य भी है, उपयोगी और कल्याणकारी भी है। अणुव्रत की आचारसंहिता में जीवन निर्माण के शक्तिशाली सूत्र हैं। उसका एक सूत्र है—मैं नशामुक्त रहूंगा। यह मानव के लिए कितने काम का संकल्प है। नशे से कितनी समस्याएं पैदा हो सकती हैं। नशे की गिरफ्त में आने वाले लोग अनेक प्रकार की कठिनाइयों से घिर सकते हैं। उनके सामने आर्थिक समस्या भी पैदा हो सकती है, शारीरिक समस्या भी हो सकती है, मानसिक, भावात्मक और पारिवारिक समस्या भी हो सकती है। परिवार में कलह-विग्रह हो सकता है, परिवार टूट सकता है। नशे से अनेक समस्याएं संभावित हो सकती हैं। इसलिए नशा नहीं करने की बात जैन-अजैन सबके लिए उपयोगी है। ऐसा नहीं कि आस्तिक के लिए तो नशा करना गलत है और नास्तिक के लिए गलत नहीं है। नशा तो हर किसी के लिए हानिकर हो सकता है। अणुव्रत नशामुक्त होने की बात कहता है। इससे स्पष्ट है कि यह मानव जीवन के कल्याण की आचारसंहिता है। अणुव्रत की आचारसंहिता कहती है—अहिंसा के मार्ग पर चलो, तोड़फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग मत लो, हिंसा को प्रश्रय मत दो। करुणा और दया की बात सबके लिए स्वीकार होनी चाहिए। उसे कौन अस्वीकार करेगा?

अणुव्रत आचारसंहिता का कथन है—प्रामाणिक और ईमानदार बनो। ईमानदारी किसके लिए उपयोगी नहीं है? व्यापारी हो, मजदूर हो, राजनीति के क्षेत्र का आदमी हो, सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने वाला व्यक्ति हो, डॉक्टर, वकील कोई भी हो, नैतिकता सबके लिए अपेक्षित है। इसलिए अणुव्रत की आचारसंहिता सबके लिए हितावह है। नशामुक्ति की बात, अहिंसा की बात, नैतिकता की बात, इन्द्रिय-संयम की बात, संग्रह के सीमा की बात सबके लिए अच्छी है। गरीबी की रेखा की बात आती है तो अमीरी की रेखा भी क्यों नहीं हो सकती? इसमें दोहरापन क्यों? गरीबी की रेखा से नीचे होना ठीक नहीं है तो अमीरी की रेखा से भी ऊपर कोई क्यों रहे? न अतिशय गरीबी अच्छी, न अतिशय अमीरी अच्छी। नशामुक्ति की बात व्यक्ति के

जीवनस्तर को सुधार सकती है तो संग्रह की सीमा अमीरी के अभिशाप से बचा सकती है।

परम श्रद्धेय आचार्य तुलसी ने विसर्जन की बात बताई थी। विसर्जन का तात्पर्य यह है कि इतने से ज्यादा पैसा मैं अपने स्वामित्व में नहीं रखूंगा। इसको संग्रह की सीमा कह दें, इच्छा परिमाण व्रत कह दें या किसी दृष्टि से विसर्जन कह दें, एक ही बात है। आदमी ने आसक्ति का परित्याग कर संकल्प ले लिया कि इतने से ज्यादा पैसा नहीं रखूंगा। यह संकल्प जीवन को एक सकारात्मक मोड़ दे सकता है।

अणुव्रत आचारसंहिता में ब्रह्मचर्य की साधना की बात भी है। परस्त्रीगमन और दुष्कर्मों से बचना सबके लिए अच्छी बात है। इस दृष्टि से अणुव्रत व्यक्ति को कुपथगामी होने से बचाता है। चरित्रवान सत्संस्कारी होने में ही निहित है मनुष्य जीवन की सार्थकता।

अणुव्रत आचारसंहिता बताती है कि साम्प्रदायिक सहिष्णुता परस्पर मैत्रीभाव में बहुत सहायक है। एक संप्रदाय के लोग अपने संप्रदाय में आस्था रखें, उसके विस्तार का प्रयत्न करें, इसमें कोई बुरी बात नहीं, पर दूसरे संप्रदाय के कार्यकलापों में व्यवधान डालें, यह अच्छी बात नहीं। इससे परस्पर के संबंधों में कटुता और दुराव पैदा हो सकता है। असहिष्णुता किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं। हर संदर्भ में सर्वधर्म समभाव भले ही न हो सके, कम से कम सद्भाव तो रखें कि सबका भला हो, सबका कल्याण हो। हम सब इस सृष्टि के अंग हैं, इसलिए परस्पर में वैरभाव क्यों रहे? अणुव्रत इसी तरह की सद्भावना की बात कहता है। अणुव्रत आचारसंहिता की यह धारा किसके लिए अनुपयोगी है? दूसरे संप्रदाय के अनुयायी बनें, यह आवश्यक नहीं, पर कम से कम दूसरे संप्रदाय की व्यर्थ निन्दा-आलोचना करने का सलक्ष्य प्रयास तो न हो।

अणुव्रत कहता है—पर्यावरण के प्रति जागरूक रहो। पर्यावरण संबंधी समस्या पैदा मत करो। यह अच्छी बात है। लेकिन पर्यावरण सुरक्षित तभी रह सकेगा, जब प्रवृत्ति में संयम होगा। दैनन्दिन जीवन के उपयोग में आने वाली चीजों का संयम, पानी का संयम, बिजली और गैस के उपयोग का संयम,

वनस्पतियों का संयम—इन सब चीजों का संयम पर्यावरण की सुरक्षा में बहुत सहायक हो सकता है। विद्युत का अनावश्यक उपयोग मत करो, पानी को भी अनावश्यक मत बहाओ। जल को जीवन कहा गया है। यह मनुष्य के जीवन के लिए ही नहीं, अन्य प्राणियों और वनस्पतियों के जीवन के लिए भी जरूरी है। पानी के असंयम के साथ जीव हिंसा की बात भी जुड़ी हुई है। इसलिए इसके उपभोग के प्रति विशेष जागरूकता रखने की जरूरत है।

अणुव्रत संयम का उपदेश देता है। आचार्य तुलसी की जन्मशताब्दी वर्ष का घोष भी यही है—जन-जन में जागे विश्वास : संयम से व्यक्तित्व विकास। जन-जन में यह विश्वास जागे कि संयम से व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, चेतना का विकास हो सकता है। अणुव्रत आचारसंहिता को स्वीकार करने के लिए जैन बनना आवश्यक नहीं है। अणुव्रत आचारसंहिता को स्वीकार करने के लिए अणुव्रत अनुशास्ता को अपना गुरु मानना भी आवश्यक नहीं है, मुखवस्त्रिका बांधकर सामायिक करना भी आवश्यक नहीं है। किसकी उपासना करें, यह व्यक्ति की अपनी नितान्त वैयक्तिक आस्था और रुचि का प्रश्न है। ठीक उसी प्रकार, जैसे आदमी तिलक किस तरह लगाता है, यह उसकी अपनी मर्जी, आदमी मुखवस्त्रिका बांधकर धर्मोपासना करता है या खुले मुंह करता है, यह भी उसकी अपनी मर्जी। इन मुद्दों से अणुव्रत आचारसंहिता का कोई लेना-देना नहीं है। आदमी गुरु के रूप में किसको मानता है, यह उसकी अपनी इच्छा और आस्था। अणुव्रत इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता। उसका मूल उद्देश्य है मानवीय शुचिता के प्रति व्यक्ति को जागरूक करना, संकल्प के द्वारा उसको हृदयंगम कराना। आदमी का आचरण मानवीय होना चाहिए। उपासनात्मक धर्म व्यक्ति का अपना है, वह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। जीवन में आचरणात्मक धर्म को स्थान मिले, यह अणुव्रत का कथन है। वैसे अणुव्रत जैनधर्म से जुड़ा हुआ है। यह श्रावक के लिए पाल्य है, पर अणुव्रत आंदोलन के रूप में, ग्यारह नियमों के रूप में जो अणुव्रत है, विभिन्न वर्गों के लिए जो वर्गीय अणुव्रत हैं, उनके लिए जैन धर्मावलंबी बनना आवश्यक नहीं है।

आदमी जिस किसी क्षेत्र में कार्य करे, अपेक्षा इस बात की है कि जीवन में शुद्धता रहे। गृहस्थ को जीविकोपार्जन के लिए कितनी तरह के कार्य करने

होते हैं। लेकिन उन कार्यों में संलिप्त रहकर भी वह अणुव्रत आचारसंहिता का ध्यान रखे, नैतिकता, प्रामाणिकता को बनाए रखने का प्रयास करे। कोई व्यापारी है, तो व्यापार में प्रामाणिकता का प्रयास करे, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, इंजीनियर हैं तो यथासंभव उस पेशे में प्रामाणिकता का प्रयास करें, यह काम्य है। जिस किसी भी क्षेत्र में आदमी कार्यरत है, उसमें शुद्धता बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। यही अणुव्रत की आवाज है, यही अणुव्रत का संदेश है।

आदमी सोचे कि मानव जीवन अनंतकाल का नहीं है। मानव जीवन तो क्या, किसी का भी जीवन, यहां तक कि देवों का भी जीवन अनंतकाल का नहीं है। केवल मोक्ष के जीव ऐसे हैं, जो अनंतानंतकाल तक वहां रहेंगे।

हमें मानव तन मिला है तो मानवीयता को बनाए रखने का प्रयास करें। मानव होकर दानव तुल्य जीवन क्यों जीएं? ठीक है, कोई महात्मा न बन सके, तो दुरात्मा तो न बने। परमात्मा अभी नहीं बन सकते तो सदात्मा तो बने। सदात्मा बन गए तो इसका मतलब होगा, अणुव्रत का प्रभाव हमारे जीवन में आया है। जो अणुव्रती बन गया है, वह कुछ अंशों में तो सदात्मा बन गया, ऐसा कहा जा सकता है। इसलिए अणुव्रत जो एक मानवीय आचारसंहिता है, उस पर मनन किया जाए और उसको आत्मसात करने का प्रयास किया जाए तो आदमी कल्याण की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

नियम पहला

१. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।

- *आत्महत्या नहीं करूंगा।*
- *भ्रूण हत्या नहीं करूंगा।*

हमारी दुनिया में अनन्त-अनन्त प्राणी हैं। इन सबमें जिजीविषा होती है। सामान्यतया कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। जब प्राणी जीना चाहता है तो उसके जीने में व्यर्थ बाधक नहीं बनना चाहिए। साधु के लिए कहा गया है कि वह हिंसा का वर्जन करे और अहिंसा का पालन करे। परन्तु गृहस्थों के लिए भी अहिंसा अच्छी होती है। अहिंसा तो सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। इस दुनिया में आदमी हिंसा करता है। आदमी ही नहीं, पशु भी हिंसा करता है। हिंसा के अनेक प्रकार होते हैं। कौनसी हिंसा किस भूमिका में की जाती है यह विवेच्य विषय होता है।

● आरम्भजा हिंसा—खेती-बाड़ी, रसोई आदि में हिंसा होती है। खेती में ऐसे पदार्थों का प्रयोग किया जाता है, जिससे कितने-कितने जीव मर जाते हैं। खेती भी एक प्रकार से हिंसा का कार्य हो जाता है तो क्या खेती को बंद कर दिया जाए। अगर खेती बंद हो गई तो आदमी का पेट कैसे भरेगा? निष्कर्ष यह निकलता है कि खेती से हिंसा तो होती है। फिर भी उसे बंद नहीं किया जा सकता। यह अनिवार्य कार्य है। वहां हिंसा करना लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य तो जीवन को चलाना है। गार्हस्थ्य में रहते हुए सब लोग उससे मुक्त हो जाएं, यह संभव नहीं है। इसको आरम्भजा हिंसा अथवा अनिवार्य हिंसा की कोटि में स्वीकार किया जा सकता है।

● उद्योगजा हिंसा—जीवन के लिए उद्योग भी आवश्यक है। आदमी को पदार्थ चाहिए। पदार्थों की आपूर्ति के लिए कारखानों की भी आवश्यकता

होती है। उद्योग-धन्धे, कल-कारखाने चलते हैं, फैक्ट्रियां भी चलती हैं, वहां भी हिंसा संभव है। वह अनिवार्य कोटि की हिंसा होती है।

● प्रतिरक्षात्मक हिंसा—दूसरा कोई आक्रमण कर दे तो अपनी सुरक्षा के लिए बचाव भी करना पड़ता है। उसमें भी हिंसा होती है, किन्तु वह अनिवार्य कोटि की हिंसा होती है। जब शत्रु सेना देश पर आक्रमण करती है तो भारतीय सैनिक कार्यवाही करते हैं। उसमें भी हिंसा होती है, पर वह हिंसा मुख्यतया मारने के लिए नहीं, देश की रक्षा के लिए होती है। सैनिक का कर्त्तव्य होता है देश की रक्षा करना। जो सैनिक समरांगण में जाकर पीछे पांव कर लेता है वह कायर सैनिक होता है। सैनिक के लिए दो बातें गौरवास्पद होती हैं—

० सैनिक लड़ते-लड़ते शहीद हो जाएं।

० सैनिक लड़कर विजेता बन जाएं।

राष्ट्र की सुरक्षा के लिए जो हिंसा की जाती है, वह प्रतिरक्षात्मक हिंसा है, प्रतिरोधजा हिंसा है। यह भी आवश्यक हिंसा की कोटि में आती है।

आरम्भजा हिंसा, उद्योगजा हिंसा, प्रतिरक्षात्मक हिंसा—ये तीनों प्रकार की हिंसाएं गार्हस्थ्य में निंदनीय स्तर की हिंसाएं नहीं हैं। ये आवश्यक कोटि की हिंसाएं हैं।

● संकल्पजा हिंसा—इसमें न कोई खेती-बाड़ी की बात है, न कोई उद्योग की बात है और न कोई रक्षा की बात है, पर संकल्प कर लिया कि मैं इसको मारूंगा। आवेग, क्रोध, लोभ आदि की अतिभावना से जो हिंसा की जाती है, वह संकल्पजा हिंसा है। यह हिंसा गृहस्थ के लिए निंदनीय होती है। ऐसी हिंसा से गृहस्थ को बचना चाहिए। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन का संप्रवर्तन किया। अणुव्रत को दो रूपों में देखा जा सकता है। श्रावक के बारह व्रतों में पांच अणुव्रत हैं और सात शिक्षाव्रत हैं। उनके साथ तो जैनधर्म का दर्शन जुड़ा हुआ है, किन्तु आचार्य तुलसी ने जो अणुव्रत आंदोलन शुरू किया, वह केवल जैनधर्म के लिए ही नहीं है। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म में आस्था रखने वाला हो और मैं तो यहां तक कहता हूं कि नास्तिक विचारधारा वाला व्यक्ति भी उस अणुव्रत की आचार-संहिता को स्वीकार कर सकता है। अणुव्रत की आचार-संहिता के मूल ग्यारह नियम

हैं। हालांकि वर्गीय अणुव्रत भी हैं। शिक्षक के लिए अलग, विद्यार्थी के लिए अलग, व्यापारी के लिए अलग, कर्मचारी के लिए अलग-अलग भी हैं। किन्तु ग्यारह नियम तो शिक्षक, विद्यार्थी आदि सबके लिए उपयोगी हैं। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का पहला नियम है—**मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।**

- आत्महत्या नहीं करूंगा।
- भ्रूण हत्या नहीं करूंगा।

अहिंसा के साथ अणुव्रत की आचार संहिता का प्रारम्भ हुआ है। गृहस्थ लोग कार आदि वाहन से यात्रा करते हैं। तब कितने कीड़े-मकोड़े मरते हैं, पशु तक मर जाते हैं और कभी-कभी तो आदमी तक की हिंसा हो सकती है। परन्तु वहां मारने का संकल्प नहीं है, आवेश का भाव नहीं है। वह जीवन की एक चर्या है, सुविधा है, इसलिए आदमी वाहन का प्रयोग करता है। हालांकि वाहन प्रयोग की सीमा करना भी अच्छी बात है। परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने फरमाया था कि समणियों को देर रात में कार आदि से यात्रा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि दोनों ओर से नुकसान की बात है। देर रात की यात्रा में दुर्घटना की संभावना भी ज्यादा रहती है और रात में हिंसा का प्रसंग भी ज्यादा आता है।

हिंसा के अनेक कारण हो सकते हैं। मेरी जानकारी में तीन कारण मुख्य हैं—

१. अज्ञान जनित हिंसा

२. अभाव जनित हिंसा

३. आवेश जनित हिंसा।

- अज्ञान जनित हिंसा—एक बच्चा अहिंसा को जानता ही नहीं है। उसने किसी कीड़े-मकोड़े को देखा और उसे मार दिया। वह अज्ञानवश हिंसा कर देता है। ऐसे अनेक लोग होंगे जो अहिंसा को समझते ही नहीं हैं, इसलिए अज्ञानवश हिंसा कर देते हैं।

● अभाव जनित हिंसा—अभाव के कारण भी आदमी हिंसा में चला जाता है। परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी कहा करते थे कि बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी भी हिंसा का कारण बन जाती है। अभाव से स्वभाव बिगड़ता है। अभाव के कारण आदमी गलत काम कर सकता है। एक बार यात्रा के दौरान कोई संस्थान आया। मुझे अन्दर आने के लिए कहा गया। मैं अन्दर चला गया। मुझे एक भाई ने बताया कि यहां छोटे-छोटे अनाथ बच्चे हैं। इन अनाथ बच्चों को यहां भर्ती करके हमने इनको आतंकवादी बनने से बचा लिया। ये अभावग्रस्त अनाथ बच्चे हैं। अगर इनको कहीं आश्रय नहीं मिलता तो ये आतंकवाद, हिंसा आदि के मार्ग पर आगे बढ़ सकते थे। जब आदमी का पेट खाली होता है तो वह पेट भरने के लिए क्या-क्या पाप नहीं कर लेता। किसी ने ठीक कहा है—क्षुधा समान वेदना नाहि अर्थात् भूख के समान वेदना नहीं होती। इस प्रकार अभावग्रस्त आदमी हिंसा, अपराध में जा सकता है।

● आवेश जनित हिंसा—आदमी क्रोध, लोभ आदि के वशवर्ती होकर हिंसा करता है। हिंसा के तीन क्षेत्र होते हैं—मनी, सेक्स एण्ड पॉवर। आदमी धन के लिए सामने वाले की हिंसा कर देता है। कामवासना के संदर्भ में भी आदमी हिंसा कर देता है। कभी-कभी समाचार पत्र में आता है कि युवकों ने लड़की को उठाया। उसके साथ बलात्कार किया और उसको मार कर कहीं फेंक दिया। इस प्रकार सेक्स के लिए भी हिंसा हो जाती है। सेक्स के संदर्भ में संयम न होने के कारण रावण ने सीताजी जैसी महिला का हरण कर लिया। पॉवर यानी सत्ता पाने के लिए आदमी हत्या कर सकता है। जैसे किसी व्यक्ति को सत्ता प्राप्त करनी है किन्तु सामने वाला सत्ता पर बैठा है तब तक उसे सत्ता नहीं मिलेगी। इसलिए वह हिंसा कर डालता है। हिंसा शरीर से होती है, वाणी से भी होती है और मन से भी होती है। हिंसा की भी जाती है, कराई भी जाती है और हिंसा की अनुमोदना भी की जाती है। गृहस्थ के लिए पूर्णतया अहिंसक होना संभव नहीं है। परन्तु हिंसा की सीमा तो करें। निरपराध चलने फिरने वाले प्राणियों की हिंसा नहीं करने का संकल्प भी हिंसा का एक प्रकार से सीमाकरण हो जाता है। अणुव्रत का एक आयाम यह अहिंसा व्रत है।

भारतीय वाङ्मय में जो पांच यम अथवा पांच व्रत बताए गए हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पांचों व्रत अणुव्रत आचार संहिता के आधारभूत तत्त्व हैं। इन पर ही अणुव्रत की आचार संहिता टिकी हुई है। आदमी हिंसा के मार्ग पर चलने से बचने का प्रयास करे। अणुव्रत की आचार संहिता को स्वीकार करने वाला व्यक्ति आत्महत्या भी न करे और भ्रूणहत्या भी न करे। गुस्से में, आवेश में आकर आदमी कभी दूसरों की हत्या की तो कभी आत्महत्या की बात भी सोच लेता है। किन्तु अणुव्रत कहता है न दूसरों की हत्या करो और न खुद की हत्या करो। भ्रूण लड़की का है यह जानकारी मिल जाती है तो आदमी कभी-कभी उसे भी मारने की बात सोच लेता है। कई अन्य कारण भी बन सकते हैं। कई मजबूरियां भी सामने आ सकती हैं, जिससे गर्भस्थ शिशु की हिंसा भी कर दी जाती है, परन्तु आदमी का प्रयास यह होना चाहिए कि मैं गर्भस्थ शिशु की हत्या करने-कराने से बचने का प्रयास करूं। पिछले वर्षों में कन्या-भ्रूणहत्या के विरोध की बात भी काफी व्यापक बनी है। अणुव्रत का नियम बताता है कि भ्रूणहत्या जैसे कृत्य से बचने का प्रयास करो। अच्छा आदमी बनने के लिए अणुव्रत के छोटे-छोटे व्रतों को स्वीकार करना अपेक्षित है। व्यक्ति सुधार से ही समाज सुधार और राष्ट्र सुधार हो सकता है। अणुव्रत रूपी कल्पवृक्ष की छांव में बैठने से पाप से निजात मिल सकेगी और अच्छा जीवन जीने का मौका मिल सकेगा।

नियम दूसरा

२. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।

- *आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।*
- *विश्व शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।*

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—सव्वे पाणा परमाहम्मिया अर्थात् दुनिया के सब प्राणी सुखेच्छु होते हैं और सुखी रहते हुए जीवन जीना चाहते हैं। परन्तु बीच-बीच में दुःख भी आ जाता है, कष्ट भी आ जाता है। ऐसे प्राणी तो कितने होंगे, जिनके जीवनकाल में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं आता। प्रायः सभी के जीवन में कभी-कभार तो दुःख आ ही जाता है। आदमी की यह कमजोरी है कि वह दुःखों से डरता है। वह सोचता है कहीं दुःख आ न जाए। भगवान् महावीर ने एक बार साधुओं को आमंत्रित कर पूछा—किं भया पाणा? अर्थात् प्राणियों को भय किस चीज का लगता है? सब साधु मौन थे। आखिर भगवान् महावीर ने ही उत्तर दिया—दुक्ख भया पाणा अर्थात् प्राणी को दुःख से डर लगता है। इस दुनिया में दुःख भी है और दुःख का कारण भी है। अगर दुःख का मूल कारण खोजा जाए तो मुझे लगता है अपने भीतर का राग-द्वेष ही दुःख का कारण है। वीतराग के राग-द्वेष नहीं होता, इसलिए वीतराग बहुत सुखी होता है। जिसको न तो किसी चीज का भय है, न लालसा है, न आकर्षण है, न गुस्सा है। वह कितना सुखी होता है। जो सिद्ध आत्माएं सिद्धत्व को प्राप्त हो चुकीं, उनसे बड़ा सुखी तो दुनिया में कोई नहीं होता। उनके शरीर नहीं होता, इसलिए शारीरिक कष्ट की तो बात ही नहीं है। उनके मन नहीं होता, इसलिए मानसिक दुःख की भी बात नहीं है। वहां तो केवल शुद्ध चेतना है। अनंत आनंद में लीन रहने वाली आत्माएं परम सुखी होती हैं।

संसारी जीव जो अवीतराग हैं, यदाकदा कष्टापतित होते रहते हैं, डरते

रहते हैं। यह डर कभी वास्तविक भी होता है और काल्पनिक भी होता है। काल्पनिक डर भी आदमी को सता सकता है। एक बार का प्रसंग है। वि.सं. २०३२ का मर्यादा महोत्सव लाडनूं में हुआ था। उन दिनों गुरुदेव तुलसी का प्रवास सेवाकेन्द्र की हवेली में हो रहा था। एक रात संत सो रहे थे। उनका सुना हुआ था कि यहां पीरजी रहते हैं और वे कभी-कभी रात में आते भी हैं। मुनिश्री बुद्धमलजी की अचानक रात्रि में नींद टूट गई। उन्होंने देखा कि पास में ही कोई सफेद कपड़े पहने हुए बैठा है। तत्काल उन्हें पीरजी की बात याद आ गई। उन्होंने सोचा कि आज तो रात को पीरजी यहां आ गए हैं। संभवतः उनके मन में कुछ भय का भाव आ गया होगा। फिर उन्होंने हिम्मत कर रजोहरण हाथ में लिया और सफेद कपड़े के लगाया। कपड़ा नीचे गिर गया और अन्दर बड़ा मटका अर्थात् मूण निकली जिसमें संत पानी डालते थे। उसे शाम को खाली करके वहां रखा था और ऊपर कपड़ा ढक दिया था। रात्रि में अंधकार के कारण उनको वहम हो गया कि पीरजी आ गए हैं। मन में कल्पना आने से भी आदमी डर जाता है। वास्तव में तो कभी भूत-प्रेत आए या नहीं, पर दिमाग में भूत की बात आ जाती है तो आदमी डरने लगता है। काल्पनिक भय से आदमी ज्यादा डरता है। आदमी दुःख से डरता है, बीमारी से डरता है, मौत से डरता है, अपमान से डरता है। उसे चोरी का भी डर लगता है। इस प्रकार अनेक रूपों में आदमी को डर लगता है। हालांकि आदमी कोई सिद्ध भगवान तो है नहीं, जो पूर्णतया निर्भीक हो जाए। उसमें भय की कमजोरी है, इसलिए यदाकदा भयभीत होता रहता है। आदमी स्वयं भी डरता है और दूसरों को डराने का प्रयास भी कर लेता है। दूसरों को डराना भी एक प्रकार की हिंसा है, पाप है। किसी को भयभीत करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जीवन में परिस्थितियां आ सकती हैं, किन्तु उनसे डरना नहीं चाहिए, निर्भीक रहने का प्रयास करना चाहिए। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन का संप्रवर्तन किया। उस अणुव्रत की आचार संहिता का दूसरा नियम है—**मैं आक्रमण नहीं करूंगा।**

- आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
- विश्व शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।

दो बातें होती हैं। पहली बात, स्वयं चलाकर आक्रमण करना। दूसरी

बात, दूसरा कोई आक्रमण करे तो अपनी सुरक्षा करना। सुरक्षा की बात तो राष्ट्र के लिए आवश्यक होती है। अगर राष्ट्र में सुरक्षा न हो तो राष्ट्र की जनता फिर किसके भरोसे रहेगी। कितने सैनिक राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध रहते हैं। जवान सुरक्षा के लिए पहरा देते हैं, जागरूक रहते हैं, तब देश की जनता सुख से सोती है। सेना का तो काम है देश की सुरक्षा करना। राष्ट्र के संदर्भ में सुरक्षा नीति गलत नहीं है। पर आक्रामक नीति नहीं होनी चाहिए और आक्रामक नीति का समर्थन भी नहीं करना चाहिए। अगर विश्व को शांति से रहना है तो विश्व का कोई भी देश आक्रामक नीति का प्रयोग न करे। कोई किसी राष्ट्र की सीमा को हड़पने का प्रयास न करे। सीमा पर कब्जा करने का प्रयास न करे। यह नीति प्रत्येक राष्ट्र की होनी चाहिए कि हमारी भूमि हमारे पास है। हम दूसरों की भूमि पर अधिकार जमाने का प्रयास न करें। यदि कोई विवादास्पद भूमि है तो मिल बैठकर निर्णय करना चाहिए कि वास्तव में यह भूमि किसके अधिकार की है। दुनिया में भूमि को लेकर भी कलह होता है, युद्ध भी हो सकता है।

जब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा कि इन पांचों पाण्डवों को रहने के लिए मात्र पांच गांव दे दो, तब दुर्योधन ने कहा—सूच्यग्रमेव न दास्यामि, विना युद्धेन केशव! अर्थात् हे केशव! युद्ध किए बिना तो सूई के अग्रभाग जितनी भूमि भी नहीं दूंगा। भूमि तो विवाद का एक बड़ा मुद्दा बन सकता है।

दूसरों की सम्पत्ति पर भी अधिकार नहीं जमाना चाहिए। जरूरत हो तो शिष्ट व्यवहार के साथ प्राप्त करें, वह कोई बुरी बात नहीं होती, परन्तु चौर्यवृत्ति से किसी की सम्पत्ति को हड़पने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अणुव्रत ने एक सुन्दर पथदर्शन दिया है कि आक्रामक नीति नहीं रहनी चाहिए। निःशस्त्रीकरण की बात तो बहुत ऊंची है। समस्या यह आती है कि दूसरे राष्ट्रों के पास शस्त्र हैं और एक राष्ट्र निःशस्त्रीकरण की बात सोचे तो सुरक्षा के आगे प्रश्नचिह्न लग जाता है। बिना शस्त्रों के सुरक्षा भी कैसे होगी? शस्त्र न रखे तो जनता फिर किसके भरोसे रहेगी। दो प्रकार के शस्त्र होते हैं—आयस् शस्त्र और मार्दव शस्त्र। लोह के शस्त्रों से दूसरों को जीतने का और अपनी रक्षा का प्रयास किया जाता है इसलिए आयस् शस्त्रों की भी अपेक्षा होती है, पर दूसरा शस्त्र होता है मार्दव शस्त्र यानी अपनी मृदुता से,

समझौते की वृत्ति से समस्या का समाधान करना। पहला प्रयास तो हर राष्ट्र का यह होना चाहिए कि कहीं कोई समस्या हो तो मार्दव शस्त्र के द्वारा उसको समाहित करे। मिल-बैठकर बात करे, वार्तालाप के द्वारा, निगोशियेशन के द्वारा, समझौते के द्वारा समस्या का हल खोजने का प्रयास करे। अगर दो राष्ट्रों के बीच में किसी बात को लेकर युद्ध होता है तो आखिर युद्ध कब तक चलेगा? एक महीना, चार महीना, एक साल....आखिर तो प्रायः युद्ध विराम होता ही है। इतनों को मराने-मारने के बाद युद्ध विराम की बात की जाती है तो पहले ही ऐसी बात क्यों नहीं कर ली जाए। आखिर तो शांति की बात ही होती है। अगर वह शांति की बात पहले ही बलवत्ता के साथ हो जाए तो इतनी हिंसा हो ही नहीं। हालांकि शांति से समझौता न हो तो कई बार फिर युद्ध करना पड़ता है, किन्तु वह नम्बर दो की बात होनी चाहिए। नम्बर एक पर तो मार्दव शस्त्र ही रहना चाहिए।

अणुव्रत का संदेश है कि आक्रामक नीति का समर्थन न हो और विश्वशांति के लिए प्रयास हो। प्रयास तो व्यक्ति के अपने स्तर के आधार पर किया जा सकता है। कोई उच्चस्तरीय राजनीति के लोग हैं, वे विश्वशांति के लिए उच्चस्तर का प्रयास कर सकते हैं और सामान्य आदमी शांति की मंगलकामना भी कर सकता है कि सब शांति में रहें, सब सुख में रहें। यह कामना करना भी विश्वशांति का एक प्रयास है। भावना का भी अपना बल होता है। अच्छी भावना भी विश्वशांति की दिशा में प्रयास हो जाता है। अणुव्रत निःशस्त्रीकरण की बात भी कहता है। श्रावक के बारह व्रतों में निःशस्त्रीकरण की बात आती है। वहां कहा जाता है कि शस्त्रों के निर्माण से बचें, कलपूर्जों को जोड़ने से बचें। जैन आगमों में आयारो नाम का बड़ा महत्त्वपूर्ण आगम है। उसका पहला अध्ययन है—सत्थ पइण्णा। उसमें अनेक प्रकार के शस्त्र बताए गए हैं। जैसे पृथ्वीकाय का जीव है तो उसके लिए दूसरी मिट्टी भी शस्त्र बन सकती है, अग्नि भी शस्त्र बन सकता है। रास्ते में खोदी हुई मिट्टी पड़ी है उस पर कोई पैर रखता है तो वह पैर रखना भी उन मिट्टी के जीवों के लिए शस्त्र का काम करने वाला हो सकता है। यदि कोई उस पर पैर नहीं रखता तो यह भी निःशस्त्रीकरण का प्रयोग हो जाता है। कोई व्यक्ति हरियाली पर चलता है तो उन जीवों की हिंसा हो सकती है। वह

चलना भी उन जीवों के लिए शस्त्र बन जाता है, किन्तु उस पर न चले तो एक निःशस्त्रीकरण का प्रयोग हो जाता है यानी जीवों की हिंसा से बचने का प्रयास और जिन साधनों से हिंसा होती है उन साधनों को न रखने का प्रयास भी निःशस्त्रीकरण का ही प्रयोग है। अगर आज सभी यह संकल्प कर लें कि कोई भी देश अणुबम का प्रयोग कभी नहीं करेगा तो निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम उठ सकता है। शस्त्र तो प्राचीन काल में भी होते थे, परन्तु वर्तमान के शस्त्रों की जो स्थिति है, वह बड़ी भयावह है। उस समय तो तलवार, भाला आदि शस्त्र होते थे, जिनसे कुछ लोगों की हिंसा हो सकती थी, पर अणुबम तो ऐसा शस्त्र है जिससे कुछ ही देर में पता नहीं कितनों का संहार हो जाए। अगर विश्व स्तर पर ऐसा चिन्तन हो कि अणुबम का प्रयोग कोई भी देश किसी भी स्थिति में नहीं करेगा तो सचमुच निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक सक्षम कदम उठ सकता है। हम कम से कम यह मंगलकामना तो करें कि दुनिया में शस्त्रों का भी अल्पीकरण हो जाए। इस प्रकार की कामना करना और फिर वैसा प्रयास करना भी निःशस्त्रीकरण की दिशा में अणुव्रत का अथवा अणुव्रती का एक अच्छा योगदान हो सकता है।

दो मार्ग होते हैं—एक हिंसा का मार्ग और दूसरा अहिंसा का मार्ग। अणुव्रत अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए संदेश देने वाला आंदोलन है। क्योंकि हिंसा आत्मा को मलिन बनाने वाला तत्त्व है और अहिंसा चेतना को निर्मल रखने वाला तत्त्व है। हिंसा दुःख पैदा करने वाला तत्त्व है और अहिंसा सुख पैदा करने वाला तत्त्व है। दुःखों को दूर करने का एक साधन है—हिंसा का अल्पीकरण। आदमी प्रयत्न करे तो हिंसा का व्यक्तिगत जीवन में भी अल्पीकरण हो सकता है। आदमी के अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अहिंसा का अभ्यास चले और राष्ट्र की नीति में भी अहिंसा रहे। अपने-अपने राष्ट्र की नीति होती है। भारत और अन्य देशों की भी राष्ट्रीय नीति इस प्रकार की बन जाए कि कोई भी राष्ट्र स्वयं चलाकर आक्रमण नहीं करेगा। इसे अहिंसात्मक नीति माना जा सकता है। परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने एक बार फरमाया था कि मैं साधु हूं, मेरे लिए अहिंसा धर्म है। पर अहिंसा एक राष्ट्र के लिए नीति भी हो सकती है और अहिंसा एक कूटनीति भी हो सकती है। अहिंसा का अपना व्यापक क्षेत्र है। व्यवहार में भी अहिंसा का

महत्त्व है। देश के लिए भी अहिंसा का महत्त्व है और विश्व के लिए भी अहिंसा का अपना महत्त्व है।

अणुव्रत ने बहुत सार्थक संदेश दिया कि आक्रामक नीति का समर्थन न हो, विश्वशांति और निःशस्त्रीकरण की दिशा में यथोचित प्रयास हो ताकि विश्व में शांति रह सके, आदमी के व्यक्तिगत जीवन में भी निर्मलता व शांति रह सके और उसका भविष्य भी अच्छा बन सके।

नियम तीसरा

३. मैं हिंसात्मक एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

आध्यात्मिक जगत का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—अहिंसा। मनुष्य धार्मिक कहलाए या न कहलाए, यह अलग बात है, पर अहिंसा की आराधना-साधना को कल्याणकारी माना गया है। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का तीसरा नियम है—**मैं हिंसात्मक एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।** कभी-कभी अपनी मांग पूरी करवाने के लिए या विरोध जताने के लिए आगजनी, तोड़-फोड़ करने का प्रयास किया जाता है। यदि तोड़-फोड़, आगजनी जैसी स्थितियां पैदा की जाती हैं तो नुकसान राष्ट्र का ही होता है। आदमी के मन में किसी बात का विरोध करने का चिन्तन आ सकता है। वह सोचता है मेरे साथ अन्याय हो रहा है। मैं इस अन्याय का विरोध करूंगा। अन्याय का विरोध करना कोई निन्दनीय बात नहीं है। किसी के साथ अन्याय होना भी नहीं चाहिए। प्रशासन का भी धर्म है कि अन्याय किसी के साथ न हो। सबके साथ न्याय हो, इस बात के प्रति जागरूकता रखनी चाहिए।

तेरापंथ धर्मसंघ का अपना मर्यादा पत्र है। उन मर्यादाओं के निर्माण का लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? वहां एक शब्द आता है न्याय अर्थात् सबको न्याय मिले इसलिए मर्यादाएं बनाई जा रही हैं या बनाई गई हैं। समाज में मानवाधिकार होता है। जिसका जो अधिकार है उसको खंडित करने का प्रयास नहीं होना चाहिए। शासक का लक्ष्य रहना चाहिए कि सबके साथ न्याय हो सके। शासक को सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए और दुर्जनों पर अनुशासन करना चाहिए। जनता में जो असामाजिक तत्त्व फैल जाते हैं, जैसे—दूसरों को परेशान करना, दूसरों की हत्या करना, दूसरों को लूटना—इन

पर नियंत्रण रखना चाहिए। गृहस्थ लोग पैसे की दुनिया में जीने वाले हैं। जहां पैसे की दुनिया है वहां मांगे भी होती हैं। कर्मचारियों की अपनी मांग होती है। शिक्षकों की अपनी मांग होती है। विद्यार्थियों की अपनी मांग होती है। ड्राइवरों की अपनी मांग होती है। इस प्रकार अनेक वर्गों के लोगों की अपनी-अपनी मांगे होती हैं। उनकी मांग पूरी नहीं होती है तब वे हड़ताल करते हैं, तोड़-फोड़ करते हैं। अणुव्रत कहता है कि तोड़-फोड़ हिंसात्मक प्रवृत्ति में नहीं जाना चाहिए। विरोध करने का अहिंसात्मक तरीका भी हो सकता है। अहिंसात्मक तरीके से विरोध करना कोई गलत बात नहीं है। काली पट्टी बांधकर भी विरोध को प्रदर्शित किया जा सकता है। तोड़-फोड़ न करके, हिंसात्मक गतिविधि में न जाकर मात्र जुलूस निकालना भी विरोध का प्रदर्शन है। तोड़-फोड़ करके राष्ट्र की सम्पदा को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए। आदमी हिंसा क्यों करता है? जब आदमी की अपेक्षापूर्ति नहीं होती है या उसके साथ न्याय नहीं होता है तो आदमी विरोध करता है। हालांकि कभी-कभी विरोध भी अन्यायपूर्ण हो सकता है। मांगें भी अनुचित हो सकती हैं। किन्तु जब मांगें पूरी नहीं होती हैं तब विरोध शुरू कर देता है। अगर मांग उचित हो और वास्तव में अन्याय हो रहा हो तो विरोध करना मेरी दृष्टि में अनुचित नहीं है। किन्तु विरोध का तरीका क्या होना चाहिए, इस पर विचार करना चाहिए। विरोध का तरीका तामसिक हो, हिंसात्मक हो, राष्ट्र की सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाने का हो तो अच्छा नहीं है। आखिर राष्ट्र हमारा ही तो है। हमारे राष्ट्र का नुकसान, हमारे द्वारा क्यों हो? विरोध न्यायाधारित हो और विरोध का तरीका अहिंसात्मक हो। न्याय और अहिंसा, ये दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। लालसा, आकांक्षा से तो कोई कितनी भी मांगें कर सकता है। मांग करना बड़ी बात नहीं। मांग न्यायपूर्ण है या नहीं, यह विशेष बात होती है। न्यायपूर्ण मांग हो तो सरकार या अधिकारी को भी चिंतन करना चाहिए। किसी की न्यायपूर्ण मांग हो तो उसकी उपेक्षा क्यों की जाए? सरकार किसी के साथ अन्याय न करे और जनता भी अन्यायपूर्ण मांगें न करें। दोनों ओर से जागरूकता हो तो राष्ट्र की व्यवस्था अच्छी रह सकती है। दुनिया में अन्याय करना पाप होता है। जो प्रशास्ता है, न्यायाधीश है, वह किसी निर्दोष को दंडित करने का प्रयास करता है तो वह पाप होता है।

शासक को न्याय के पथ पर चलना चाहिए। न्याय के रास्ते पर चलते-चलते दुनिया आलोचना करे तो भले करे, कोई निन्दा करे तो भले करे। शास्ता, प्रशासक, अधिकारी को आलोचना, निन्दा की परवाह किए बिना न्याय के पथ पर बढ़ते रहना चाहिए। कोई अच्छी बात हो तो ध्यान देना चाहिए, बेकार की बात को छोड़ देना चाहिए।

एक महात्माजी के पास कोई पत्र आया। बड़ा सुन्दर लिफाफा था। महात्माजी ने लिफाफे में से पत्र को निकाला। उसको पढ़ा और उसमें जो आलपिन लगी हुई थी, उसे निकाल ली। फिर पत्र को फाड़ कर फेंक दिया। महात्माजी के सचिव ने कहा—इस पत्र का जवाब क्या देना है? महात्माजी ने कहा—वह पत्र प्रायः बेकार था। उसमें आलपिन मेरे काम की थी। वह मैंने ले ली। इसी प्रकार कोई आलोचना निन्दा करें तो उसे छोड़ देनी चाहिए और कोई काम की बात करे तो, उस पर ध्यान देना चाहिए। आलोचना, निंदा को सुनकर अधिकारी को दिमाग भारी नहीं करना चाहिए। आलोचना आदि को सुनकर दिमाग भारी करेगा तो सरकार कैसे चलेगी। किसी की उचित मांग हो तो उस पर ध्यान देना सरकार का कर्त्तव्य होता है, पर अनुचित मांग हो तो उस व्यक्ति को समझाना चाहिए कि बेकार की मांग मत करो, अन्यायपूर्ण बात मत करो। कई बार समझाने से काम ठीक हो जाता है। सबसे अच्छा तरीका तो यही है कि आदमी को समझाने का प्रयास करें। फिर भी कोई न माने तो फिर कड़ाई से भी बात की जा सकती है। जहां तक संभव हो सके, सरकार को भी और जनता को भी, राज्य को भी और प्रजा को भी न्याय पर ध्यान देना चाहिए और अहिंसात्मक तरीके पर ध्यान देना चाहिए। जिस राष्ट्र में ऐसा होता है तो वह राष्ट्र नीति आधारित होता है। उस राष्ट्र की व्यवस्था अच्छी रह सकती है।

नियम चौथा

४. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।

● जाति रंग आदि के आधार पर किसी को उच्च-निम्न नहीं मानूंगा।

● अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—छिंदाहि दोसं अर्थात् द्वेष भाव का छेदन करो। आवश्यक सूत्र में बताया गया—मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ ण केणइ अर्थात् सब प्राणियों के प्रति मेरे मन में मैत्री है, किसी के साथ वैर भाव नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में निर्देश दिया गया—मेत्तिं भूएसु कप्पए अर्थात् सब जीवों के प्रति मैत्री का आचरण करे। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार-संहिता का चौथा नियम है—**मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।**

- जाति रंग आदि के आधार पर किसी को उच्च-निम्न नहीं मानूंगा।
- अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

कहा जाता है कि मानव जाति एक है। तब प्रश्न होता है, क्या पशु और मानव दोनों एक नहीं हैं? पशु भी पंचेन्द्रिय है, आदमी भी पंचेन्द्रिय है, दोनों एक जाति के हैं। जैनतत्त्वविद्या में पचीस बोल नामक एक थोकड़ा है। उसमें पांच जातियां बताई गई हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। सब मनुष्य पंचेन्द्रिय हैं, सब देवता पंचेन्द्रिय हैं, सब नारक जीव पंचेन्द्रिय हैं और सब पशु तिर्यंच पंचेन्द्रिय हैं। इस आधार पर सोचा जाए तो केवल मानव जाति ही एक नहीं है अपितु मानव, पशु, देवता, नारक सब एक जाति के हो जाते हैं। यह जाति का प्रकल्प सापेक्ष है। हम और आगे बढ़ें तो सब प्राणी एक हैं। सब प्राणियों में आत्मा है इसलिए प्राणी वर्ग भी एक हो जाता है। ठाणं सूत्र में कहा गया—एगे आया अर्थात् आत्मा एक है। इस

आधार पर सारे प्राणी और सिद्ध भगवान यानी जिनमें भी आत्मा है, सब एक हो जाते हैं। यह एकता या अनेकता सापेक्षता पर आधारित है। किसी दृष्टि से एक हैं और किसी दृष्टि से भिन्न भी हो जाते हैं। एक परिवार को हम एकत्व के संदर्भ में देखें तो पूरा परिवार एक है। किन्तु भिन्नत्व की दृष्टि से देखें तो कोई दादा है, कोई पिता है, कोई बेटा है, कोई पोता है। जहां भेद है, वहां अभेद को देखा जा सकता है और जहां अभेद है वहां भेद को भी देखा जा सकता है। परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का एक ग्रन्थ है—भेद में छिपा अभेद। हम भेद की दृष्टि से देखें तो भेद भी बहुत मिल सकते हैं और अभेद की दृष्टि से देखें तो अभेद भी बहुत मिल सकता है। जैन धर्म में अनेक सम्प्रदाय हैं। उनमें मुख्य दो हैं—श्वेताम्बर, दिगम्बर। फिर श्वेताम्बर में अमूर्तिपूजक, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, तेरापंथी, खतरगच्छ, तपागच्छ आदि? दिगम्बरों में भी बीसपंथी, तेरापंथी समुदाय हैं।

हम लोग कच्छ में गए। वहां हमने छह कोटि सम्प्रदाय, आठ कोटि सम्प्रदाय को देखा। एक स्थानकवासी परम्परा में कितने सम्प्रदाय हैं। अभेद को देखें तो स्थानकवासी और तेरापंथी दोनों मुखवस्त्रिकाधारी हैं। दोनों की वेशभूषा में समानता है। स्थानकवासी भी अमूर्तिपूतक विचारधारा को मानने वाले हैं और तेरापंथी भी अमूर्तिपूजक विचारधारा को मानने वाले हैं। भेद को देखें तो कई बातों में वैचारिक भेद भी है। दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में भी भेद और अभेद दोनों देखने को मिलते हैं। दिगम्बर मुनि निर्वस्त्र होते हैं और श्वेताम्बर मुनि सवस्त्र होते हैं, यह भेद है। और भी अनेक भेद हो सकते हैं। अभेद को देखें तो नवकार मंत्र, भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र आदि दोनों परम्पराओं द्वारा सम्मत है।

अभेद की दृष्टि से मानव जाति एक है, किन्तु भेद की दृष्टि से मानव जाति में भी कितनी जातियां हैं, कितने गोत्र हैं। फिर प्रश्न हुआ कि मानव जाति एक कहां हुई? वह तो कितनी जातियों में बंटी हुई है। परन्तु जातियां भिन्न होने पर भी आखिर हैं सब मानव। ओसवाल भी मानव है, अग्रवाल भी मानव है, ब्राह्मण भी मानव है, क्षत्रिय भी मानव है, वैश्य भी मानव है, क्षुद्र भी मानव है। मानव की दृष्टि से सब एक हैं। यह एकता या अनेकता तो किसी अपेक्षा से है। मूल बात है कि मानव मानव से घृणा न करे। जाति

अलग हो सकती है, रंग अलग हो सकता है, संप्रदाय भिन्न हो सकता है किन्तु जाति, रंग, सम्प्रदाय आदि के आधार पर कोई एक दूसरे से घृणा न करें। हां, पाप से घृणा करें, गलत बात से घृणा करें, पर मानवता के धरातल पर कोई किसी से घृणा न करें और मात्र जाति के आधार पर कोई किसी को उच्च-नीच मानने का प्रयास न करें। गुरुदेव तुलसी ने एक गीत में सुन्दर कहा है—

कुण ऊंचो, कुण नीचो,
मिनख-मिनख में भेदभाव री भींत अरे मत खींचो।

आदमी अपने गुणों और अवगुणों से ऊंच-नीच बनता है। संस्कृत साहित्य में कहा गया—

नाकृत्यापुरुषो नीचः नाकृत्या पुरुषो महान्।
प्रकृत्या पुरुषो नीचः, प्रकृत्या पुरुषो महान्।।

आकृति से आदमी नीचा नहीं बनता और आकृति से आदमी ऊंचा नहीं बनता। प्रकृति से आदमी उच्च हो सकता है और प्रकृति से आदमी नीच हो सकता है। दुर्जन और सज्जन के चेहरे में कोई अन्तर नहीं होता। नाक, कान, आंख आदि में समानता होती है, पर आचरणों में, विचारों में बड़ा अन्तर होता है। वह आदमी ऊंचा है जिसके विचार उदार हैं, जिसका आचार ऊंचा है और जिसके संस्कार और व्यवहार महान् हैं। जिसके विचार, आचार, संस्कार, व्यवहार आदि निम्न हैं, खराब हैं, संकीर्ण हैं, वह आदमी नीचा होता है। अणुव्रत का कहना है कि जाति, रंग आदि के आधार पर किसी आदमी को उच्च या नीच मत मानो, किसी को अस्पृश्य मत मानो। मानव से घृणा मत करो।

जाति की अपनी उपयोगिता हो सकती है, भेद की भी उपयोगिता होती है। भेद न हो तो एक-दूसरे की पहचान भी कैसे होगी? आकृति में भेद होता है, नाम में भेद होता है, प्रकृति में भी भेद होता है। ये पांच अंगुलियां हैं। इनमें भी भिन्नता है। कोई लम्बी है, कोई थोड़ी छोटी है, अंगूठा मोटा है। ये भिन्न-भिन्न हैं इसलिए वस्तु को पकड़ लेती हैं, काम कर लेती हैं। अगर सारा हाथ एक जैसा ही होता तो काम कैसे होता? जो काम अंगुलियों की भिन्नता

के कारण हम कर सकते हैं अगर अंगुलियां एकाकार हो जातीं तो वह काम कैसे होता? प्रकृति की रचना ही ऐसी है कि उसमें भिन्नता है। दो पैर अलग-अलग हैं, तब हम आराम से चलते हैं। यदि पांव एक ही हो तो चलने में कठिनाई पैदा हो सकती है। भिन्नता, भेद की उपयोगिता है। उपयोगिता के आधार पर भेद करना बुरी बात नहीं है। परन्तु भिन्नता द्वेष का आधार न बने, भिन्नता घृणा का कारण न बने, यह अपेक्षा है।

अणुव्रत ने कहा कि मानव मानव से घृणा न करे। मानवता के आधार पर मानव जाति एक है और भिन्नता के आधार पर विचार करें तो वहां भिन्नता भी है। मानव जाति को एक कहने के पीछे भी अपेक्षा है और मानव जाति को भिन्न-भिन्न रूपों में देखने के पीछे भी अपेक्षा है। अपेक्षा की उपयोगिता रखी जाए और व्यर्थ द्वेष, घृणा फैलाने का प्रयास न किया जाए तो समाज की स्वस्थता और समाज की सुखपूर्णता रह सकती है।

नियम पांचवां

५. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।

● साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।

भारत एक ऐसा देश है, जिसमें विभिन्नताएं हैं। यहां विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं। विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। यह भारत की अनेकता है, विभिन्नता है। इस विभिन्नता और अनेकता के होते हुए भी एकता का अनुभव किया जा सकता है। जैसे—हम सब भारतीय हैं। यह भारतवासियों की एकता है। हम सब मानव हैं, इस बात की भी एकता है। हम सब प्राणी हैं, चेतनावान् हैं, इससे भी एकता की अनुभूति हो सकती है। भारत में सम्प्रदाय बहुत हैं, जो धर्म से जुड़े हुए हैं। संस्कृत में कहा गया है—सम्प्रदायो गुरुक्रमः अर्थात् जो गुरु परम्परा चली आ रही है वह सम्प्रदाय है। गुरु परम्परा अपनी-अपनी अलग-अलग हो सकती है। सम्प्रदाय का अलग-अलग होना कोई बुरी बात नहीं है। जहां एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से नफरत करता है, वैर-विरोध करता है, विद्वेष करता है, दंगे-फसाद करता है, वहां कठिनाई पैदा हो सकती है। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का पांचवां नियम है—**'मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।'**

● साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।

आचार्य तुलसी कहते हैं—धर्म मुख्य चीज है, सम्प्रदाय गौण चीज है। धर्म तो फल के गुदे के समान है और सम्प्रदाय छिलके के समान है। धर्म पत्र के समान है और सम्प्रदाय लिफाफे के समान है यानी धर्म नम्बर एक की

चीज है और सम्प्रदाय नम्बर दो की चीज है।

साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए कुछ उदारता का प्रयोग करने की अपेक्षा होती है। जो सिद्धांत एक सम्प्रदाय के हैं वे ही कुछ सिद्धांत यदि दूसरे सम्प्रदाय के हैं तो जितने-जितने सिद्धांत एक समान हैं उनमें तो एकता करें। यह तो उल्लेख करें कि हमारी भी यही मान्यता है और उनकी भी यही मान्यता है। इस बात में हम दोनों एक हैं। कोई गाय काली, कोई पीली और कोई चितकबरी होती है, पर दूध तो सबका सफेद होता है। आदमी कोई गोरा है, कोई काला है, पर शरीर में खून तो सबके लाल होता है। इसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदाय हैं, पर कौनसा सम्प्रदाय यह कहता है कि झूठ बोलो, चोरी करो, हिंसा करो, दंगा करो। अहिंसा, सच्चाई, ईमानदारी और संयम की बात कौन नहीं कहता। धर्म के जो मौलिक सिद्धांत हैं उनमें तो काफी अंशों में एकता मिल सकती है। उस एकता को देखकर भी सौहार्द का भाव उत्पन्न किया जा सकता है।

अणुव्रत का संदेश है कि साम्प्रदायिक सहिष्णुता रहनी चाहिए। सम्प्रदाय अलग-अलग हैं। सब अपने-अपने क्रम के अनुसार साधना करें, पर दंगा-फसाद, झगड़ा नहीं करना चाहिए। सौहार्द और मैत्री का भाव तो मानव मात्र के साथ होना चाहिए। इससे आगे चलूं तो प्राणी मात्र के साथ मैत्री का भाव विकसित होना चाहिए। एक आदमी भगवान् की, खुदा की पूजा करे और इंसान से मैत्री न करे, इंसान को दुःख दे तो उसकी पूजा का कितना और क्या फल मिलेगा, यह सोचने की बात है। मैं तो यह सोचता हूं कि कोई भगवान् की पूजा करे या न करे, खुदा की पूजा करे या न करे, पर इंसान से मैत्री जरूर करे। प्राणी मात्र से मैत्री जरूर करे। भगवान् कोई है तो वह आपको माफ कर देगा, खुदा आपको माफ कर देगा, आप उसकी इबादत न भी करें, पर इंसान से मैत्री करें, इंसान से प्रेम करें। उस प्रेम से भगवान् की भी भक्ति हो जाएगी।

एक सूफी संत अपनी कुटिया में निश्चिंतता के साथ सो रहा था। अचानक उसकी नींद टूट गई। वह उठा। उसने देखा कि कोई व्यक्ति दीए के

प्रकाश के पास खड़ा है और कुछ लिख रहा है। संत ने पूछा—भैया! तुम कौन हो? कहां से आए हो? क्या कर रहे हो? आगन्तुक ने कहा—मैं तो फरिश्ता हूं, खुदा के दरबार से आया हूं और उन मनुष्यों के नामों की सूची बना रहा हूं जो खुदा से प्यार करते हैं। उसमें आपका नाम भी लिख रहा हूं। सूफी संत ने कहा—भैया! मेरा नाम मत लिखना, क्योंकि मैं खुदा से इतना ज्यादा प्यार नहीं करता। फरिश्ता अदृश्य हो गया। रात बीती, सुबह हुई, दिन बीता, फिर रात आ गई। सूफी संत रात को सो गया। मध्य रात्रि का समय हुआ और सूफी संत की नींद फिर टूट गई। उसने देखा कि आज फिर वह फरिश्ता आया हुआ है। संत ने कहा—भैया! मैंने तो तुमको कल ही बता दिया था कि मैं खुदा से ज्यादा प्यार नहीं करता। मेरा नाम मत लिखना। आज फिर क्यों आए हो? फरिश्ते ने बड़ा मार्मिक जवाब देते हुए कहा—महामानव! कल तो मैं उनके नाम लिख रहा था जो खुदा से प्यार करने वाले हैं। आज मैं उनके नाम लिख रहा हूं जिनको खुदा प्यार करते हैं। आप खुदा से प्यार करो या मत करो, किन्तु इंसान से प्यार करते हो, मानव मात्र से प्रेम करते हो, इसीलिए खुदा आपसे प्यार करता है। कोई व्यक्ति भगवान् की भक्ति करे या न करे, भगवान् से प्रेम करे या न करे, यह अलग बात है, पर इंसान से प्रेम जरूर करना चाहिए, प्राणी मात्र से मैत्री जरूर करनी चाहिए।

परम पूज्य गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन के द्वारा मानव जाति की सेवा करने का प्रयास किया। वे जगह-जगह पधारे और जनता को धर्म का उपदेश दिया, अध्यात्म का संदेश दिया और मानव धर्म की बात बताई। उन्होंने कहा—इंसान पहले इंसान, फिर हिन्दू या मुसलमान। पहले हम इन्सान हैं, फिर हिन्दू-मुसलमान की बात है। हम इंसानियत की भावना को पुष्ट रखें, अहिंसा-मैत्री की भावना को पुष्ट रखें। सच्चाई के प्रति आदमी की आस्था हो कि मैं किसी के साथ धोखा नहीं करूंगा। व्यापारी है तो व्यापार में धोखा न करे। कर्मचारी भी कोई गड़बड़ी न करे। आदमी किसी भी क्षेत्र में

काम करे पर नैतिकता को बनाए रखने का प्रयास करे तो धर्म जीवन में पुष्ट हो सकेगा।

हम सम्प्रदाय का सम्मान करें। सबका अपना-अपना सम्प्रदाय है। सम्प्रदायों का महत्त्व है। परन्तु साम्प्रदायिक उन्माद नहीं फैलाना चाहिए। विद्वेष की भावना विगलित होनी चाहिए और मैत्री की भावना पुष्ट होनी चाहिए। जब यह भावना पुष्ट हो जाती है तो फिर साम्प्रदायिक उन्माद को भी पनपने का अवसर नहीं मिलता और लोग शांति और समाधि में रह सकते हैं।

नियम छठा

६. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।

● अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।

● छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

आदमी के पास बुद्धि का बल होता है। हालांकि सबमें एक समान नहीं होता। कई मनुष्य अविकसित स्तर के होते हैं। वे न सम्यक्तया व्यवहार कर सकते, न सम्यक्तया विचार कर सकते। दुनिया में बुद्धिशाली लोग भी काफी मिलते हैं। बुद्धि एक ऐसा तत्त्व है जो अपने-आपमें निर्मल है। जैन तत्त्वविद्या के अनुसार वह क्षयोपशम भाव है, चेतना की निर्मलता से मिलने वाला तत्त्व है। ध्यातव्य यह है कि बुद्धि का उपयोग कहां किया जाए? बुद्धि का उपयोग अध्यात्म चिन्तन में भी किया जा सकता है, धर्म की साधना में भी किया जा सकता है और बुद्धि से किसी को ठगा भी जा सकता है। आदमी जब बुद्धि का दुरुपयोग करता है तब वह माया, मृषा का प्रयोग भी कर लेता है। यह तभी होता है जब आदमी के भीतर मोहकर्म बैठा रहता है। वह भीतर से आदमी का संचालन करता है। आदमी अपराध में क्यों जाता है, अप्रामाणिकता, गलत काम, बेईमानी क्यों करता है? इसका मुख्य कारण है मोहकर्म। राग-द्वेष, लोभ, क्रोध, मान आदि सारे मोहनीय कर्म के अंग हैं, मोह का परिवार है। आठ कर्मों में मोहकर्म को राजा के रूप में माना गया यानी जितना भी पाप का बंध होता है उसका जिम्मेवार मोहकर्म होता है। मोहकर्म न रहे तो पाप कर्म का बंधन आत्मा के हो नहीं सकता। इसलिए पाप का जनक यह मोहकर्म है। आदमी प्रवृत्ति क्या करता है इसका इतना महत्त्व नहीं होता, जितना महत्त्व इस बात का है कि मोहकर्म उस प्रवृत्ति के साथ जुड़ा हुआ है या नहीं। आदमी के मन, वचन, काया की प्रवृत्ति के साथ

मोहकर्म जुड़ जाता है तो प्रवृत्ति मलिन बन जाती है और मोह से प्रवृत्ति अप्रभावित है तो प्रवृत्ति उज्ज्वल रह जाती है।

परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का छठा नियम है—**मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।**

- अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
- छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

अगर हर आदमी में प्रामाणिकता के प्रति निष्ठा जाग जाए तो हमारी दुनिया कितनी अच्छी बन जाए। भारत संतों की भूमि रही है। अतीत में कितने ऋषि, महर्षि, तपस्वी, संन्यासी भारत की भूमि पर हुए हैं। उन्होंने तप तपा है, जप जपा है, साधना के लिए खपे हैं, डटे रहे हैं और आज भी कितने संत भारत की भूमि पर विहार कर रहे हैं। यह भारत के लिए गौरव और सौभाग्य की बात है। भारत के पास ज्ञान का भंडार है, ग्रन्थों का भंडार है। इन संदर्भों में भारत महत्त्वपूर्ण राष्ट्र है, किन्तु भारत में एक कमजोरी भी है। वह है—नैतिकता के प्रति निष्ठा में कुछ कमी। लोग अनैतिक आचरण भी कर लेते हैं। यदि लोग अणुव्रत के संदेश को स्वीकार कर लें तो फिर भारत में भी प्रामाणिकता पुष्ट रह सकती है। एक व्यापारी व्यापार करता है। व्यापार के पीछे हम विचार करें तो उद्देश्य है जनता की सेवा करना और अपने परिवार का भरणपोषण करना। इससे जनता को कितनी सुविधा हो जाती है। अगर दुकानें न हों तो जनता की आपूर्ति कैसे होगी।

एक आदमी को कपड़ा भी चाहिए, अनाज भी चाहिए, दवा भी चाहिए। जीवनयापन के लिए छोटी-छोटी अनेक चीजें चाहिए। इन सारी अपेक्षाओं की पूर्ति परिवार अपने ढंग से कैसे करेगा। इसलिए समाज की व्यवस्था इतनी सुन्दर बनाई गई कि सबको सब काम करने की जरूरत नहीं है। व्यक्ति की अपेक्षापूर्ति अनेक माध्यमों से की जाती है। आजकल तो ऐसे विक्रय स्थान, ऐसे मॉल मिलते हैं, जहां एक ही जगह बहुत सारी चीजें मिल जाती हैं। व्यापारी व्यापार को सेवा माने और यह सोचे कि मुझे व्यापार में नैतिकता रखनी है तो व्यापार भी कितना शुचितापूर्ण हो जाता है। केवल व्यापारी की ही बात नहीं है, एक डॉक्टर चिकित्सा करता है तो लोगों की

अस्वास्थ्य संबंधी चिकित्सा की अपेक्षापूर्ति हो जाती है। गांवों में कोई डॉक्टर न हो तो लोगों को कितनी असुविधा हो सकती है। जगह-जगह हॉस्पिटल होते हैं, इससे लोगों को कितनी सुविधा होती है। डॉक्टर का काम है रोगी की सेवा करना, रोगी के रोग को दूर करने का प्रयास करना। डॉक्टर तो एक प्रकार के सैनिक हैं रोग रूपी शत्रु को नष्ट करने के लिए। डॉक्टर अपने कार्य को सेवा मान ले तो वह एक प्रकार का सेवक हो जाता है और उसका सेव्य मरीज होता है। डॉक्टर अपने मरीज के प्रति समर्पित होकर काम करता है तो वह उसकी सेवा करता है और साथ में उसे जो मिलता है उससे डॉक्टर के परिवार का काम भी चल जाता है। इस प्रकार चिकित्सा करना भी सेवा का काम है। एक वकील भी सेवा करता है। वकील का धर्म यह होना चाहिए कि वह तर्कों के द्वारा न्याय को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करे। वकील में तार्किकता होती है। वह ज्ञान बल और तर्क बल के द्वारा किस प्रकार अपने मुवक्कील को विजयी बना देता है, पर वकील का लक्ष्य यही रहे कि मैं न्याय की स्थापना में अपना योगदान दूं। न्याय को स्थापित करने में वकील अपना योगदान देता है तो वह भी सेवा करता है और साथ में उसको पारिश्रमिक भी मिल जाता है, जिससे उसके परिवार का काम भी चल जाता है।

एक शिक्षक विद्यार्थी को पढ़ाता है। उसका निर्माण करता है तो वह भी ज्ञान दान के रूप में सेवा करता है। साथ में शिक्षक को वेतन मिलता है, जिससे शिक्षक का काम भी चल जाता है। न्यायाधीश न्यायदान के माध्यम से सेवा करता है। ये विभिन्न कार्य सेवा की भावना से किए जाएं और साथ में अपने परिवार के भरण-पोषण की अपेक्षापूर्ति भी हो जाए। यदि व्यक्ति का यह लक्ष्य होता है तो काफी अंशों में नैतिकता बनी रह सकती है। जहां सेवा की बात थोड़ी गौण और पैसा पाना ही मुख्य लक्ष्य बन जाता है तो वहां अनैतिकता को पैदा होने का मौका मिल सकता है। प्रमाणिकता बनाए रखने के लिए कुछ लोभ की वृत्ति पर कंट्रोल करना भी आवश्यक होता है। यह लोभ की वृत्ति भी आदमी को अप्रामाणिकता की ओर धकेल देती है। व्यक्ति एक बार तो झूठ बोल कर अपना काम निकाल सकता है, किन्तु यह ठगी, बेईमानी, अनैतिकता पाप है, आत्मा को मलिन बनाने वाला तत्त्व है

और आत्मा की अधोगति में भी यह कारण बन सकता है, इसलिए आदमी को नैतिक मूल्यों के विकास का यथोचित रूप में प्रयास करना चाहिए।

अगर ऐसा संकल्प जाग जाए और अणुव्रत की चेतना भीतर पुष्ट हो जाए तो आदमी पैसे को कुछ गौण करके भी ईमानदारी को बनाए रखने का प्रयास कर सकता है। यद्यपि ईमानदारी के पालन में कुछ कठिनाई तो आ सकती है, क्योंकि सच्चाई का रास्ता तो ऊबड़-खाबड़ भी हो सकता है, ऊंचा-नीचा भी हो सकता है, कहीं उतार, कहीं चढ़ाव, कहीं फूटा हुआ तो, कहीं कंटकाकीर्ण भी हो सकता है। इन सबकी परवाह किए बिना अगर आदमी सच्चाई के रास्ते पर चलता है तो मंजिल बड़ी सुन्दर मिलती है।

परम पूज्य आचार्य तुलसी ने जो अणुव्रत का यह मार्ग बताया है वह सुख देने वाला है, परन्तु मैं सोचता हूं कठिनाइयां कहां नहीं आती। क्या झूठ बोलने वाले के सामने कष्ट नहीं आते। मुझे तो यों लगता है किसी संदर्भ में कि झूठ बोलने में जितने कष्ट आते हैं उनकी तुलना में तो सच्चाई का रास्ता बढ़िया है। झूठ बोलने में तो कितना तनाव होता है, एक झूठ को ढकने के लिए कितने झूठ बोलने पड़ते हैं। झूठ बोलने वाले के दिमाग को कितना काम करना पड़ता होगा। यदि झूठ पकड़ में आ जाए तो सारी पोल खुल जाती है। जब झूठ के रास्ते में भी कष्ट हैं और सच्चाई के रास्ते में भी कष्ट आ सकते हैं तो फिर झूठ का रास्ता क्यों लें। जितना संभव हो मनोबल को मजबूत करके आदमी को सच्चाई के पथ पर, नैतिकता के पथ पर, प्रामाणिकता के पथ पर चलने का प्रयास करना चाहिए।

नियम सातवां

७. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—अहणे निज्जायरूवरयए, गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू अर्थात् जो अधन, स्वर्ण और चांदी से रहित है, गृही योग (क्रय-विक्रय आदि) का वर्जन करता है, वह भिक्षु है।

धन-धान्य, सोना-चांदी आदि रखना गृहस्थ के लिए तो मान्य है, पर जैनशासन में साधु के लिए इसे अमान्य किया गया है। साधु अपरिग्रह का साधक होता है। गार्हस्थ्य में अपरिग्रह की पूर्ण साधना कठिन है। इसलिए वहां सीमाकरण की बात कही गई है। गृहस्थ जीवन में अर्थ भी अपेक्षित होता है और काम भी चलता है। गार्हस्थ्य को एक रथ कहा जा सकता है। उस रथ के दो पहिए होते हैं—एक अर्थ का और दूसरा काम का। उस रथ का सारथी होता है धर्म। अगर रथ पर धर्म का अंकुश है तो वह अच्छी तरह चल सकता है। अगर धर्म का अंकुश नहीं है, फिर तो बिना ब्रेक की कार जैसी स्थिति हो जाती है।

एक कार जा रही थी। रात्रि का समय था। कार में लाईट नहीं थी। ट्रॉफिक पुलिस ने कहा—कार रोको। तुम्हारी कार में लाईट नहीं है। कार में बैठा ड्राइवर बोला—तुम एक ओर हट जाओ। इसके ब्रेक भी नहीं है। जिस कार के लाईट भी नहीं और ब्रेक भी नहीं, वह कितनी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। प्रकाश और नियंत्रण दोनों अपेक्षित हैं। अर्थ और काम पर धर्म का अंकुश होना चाहिए। अणुव्रत एक प्रकार का अंकुश लगाने वाला तत्त्व है। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का

सातवां नियम है—**मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।** इस नियम को स्वीकार करने से काम पर भी अंकुश हो जाता है और अर्थ पर भी अंकुश हो जाता है। यद्यपि सांसारिक जीवन में भोग मान्य है, परन्तु वह निरंकुश नहीं होना चाहिए। भोग पर योग का अंकुश रहना चाहिए।

जैन वाङ्मय के श्रावकाचार में स्वदार-संतोष की बात कही जाती है। अपनी स्त्री या अपने पति के सिवाय भोगेच्छा नहीं करना, भोग की एक सीमा है। महासती सीताजी के जीवन में जब अग्नि-परीक्षा का प्रसंग आया, तब उन्होंने अपने संयम की बात उजागर करते हुए कहा—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे,
यदि मम पतिभावः राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह शरीरं मामकं पावकेदं,
विकृतसुकृतभाजां येन साक्षि त्वमेव।।

हे अग्नि देवता! मन से, वचन से, काया से, जागते या सोते, सपने में भी, एक रामचन्द्रजी के सिवाय मेरे मन में किसी के प्रति कोई विकृत भाव आ गया हो तो मेरे शरीर को तुम जला डालो। किन्तु सीताजी का शरीर जला नहीं क्योंकि सीताजी का संयम-शील मानो रक्षा कवच बना हुआ था।

अणुव्रतों को स्वीकार करने वाला ब्रह्मचर्य की साधना करता है और उस साधना का एक सीमाकरण है, स्वदार-स्वपति संतोषी बनना। इससे आगे भी सीमा की जा सकती है। जैन शास्त्रों में ग्यारह उपासक प्रतिमाएं बताई गई हैं। उनमें पांचवीं प्रतिमा में यह कहा गया है कि मैं दिन में ब्रह्मचारी रहूंगा। रात्रि में मैथुन की सीमा करूंगा। ब्रह्मचर्य की यह भी साधना है। इससे और आगे बढ़ा जा सकता है, दिनों की सीमा भी की जा सकती है। जैसे एक महीने में पन्द्रह दिनों तक भोग नहीं करूंगा। इस प्रकार एक गृहस्थ अनेक रूपों में ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। यह भोग पर संयम का अंकुश है।

अणुव्रत कहता है—अर्थ-संग्रह की भी सीमा करो। जैनधर्म ने इच्छा-परिमाण का सूत्र दिया। श्रावक इच्छाओं का परिसीमन करे, धन की भी सीमा करे। वह संकल्प करे कि मैं इतनी राशि से ज्यादा अपने स्वामित्व में नहीं

रखूंगा। जैसे सन् २०१४ की सम्पन्नता के बाद मैं १०, २०, ५० लाख से ज्यादा परिग्रह या पैसा नहीं रखूंगा। यह अर्थ की सीमा हो गई। जब व्यक्ति को यह लगे कि वर्ष तो संपन्न होने जा रहा है और मेरे पास संग्रह ज्यादा है तो फिर व्यक्ति उसकी कोई व्यवस्था करे, चाहे किसी संस्था को दान दे या किसी कार्य में उसका सदुपयोग करे, किन्तु अपने पास ज्यादा पैसा नहीं रखे। अर्थ के अर्जन में साधन शुद्धि रहनी चाहिए। अर्थ के लिए संस्कृत साहित्य में कहा गया—अर्थमनर्थं भाव्यं नित्यम् अर्थात् अर्थ को अनर्थ समझो। हालांकि अर्थ बड़ा काम का होता है। साधु के लिए तो अर्थ अनर्थकारी हो सकता है पर गृहस्थ के लिए बड़ा सार्थक होता है। यदि गृहस्थ के पास अर्थ नहीं होता तो वे साधुओं के पास कैसे पहुंचते? परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने दो शब्द फरमाए—अर्थ और अर्थाभास। न्यायोपार्जितं धनं अर्थः अर्थात् न्याय या नैतिकता से जो पैसा अर्जित होता है, वह तो अर्थ है और अन्यायोपार्जितं धनं अर्थाभासः अर्थात् अन्याय या अनैतिकता से जो पैसा अर्जित होता है, वह अर्थाभास है। अर्थाभास अनर्थकारी हो सकता है। गृहस्थ होकर किसी के सामने हाथ फैलाए तो यह कोई गौरव की बात नहीं होती। साधु हाथ फैलाए तो कोई बुरी बात नहीं होती। साधु को तो मांगने का अधिकार है। किन्तु गृहस्थ के लिए मांगना मानसिक संताप का कार्य होता है। गरीबी गृहस्थ के लिए गौरव को गंवाने की स्थिति बन जाती है। भारत में अनेक लोग गरीबी की रेखा के नीचे हो सकते हैं। गरीब आदमी की एक अलग ही कहानी होती है। परम पूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी सन् २००३ में मुंबई पधारे थे। मैं भी उनके साथ था। मैं सवेरे मॉर्निंग वॉक के लिए जाता तो मार्ग में बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं दिखाई देतीं। उन अट्टालिकाओं के नीचे फुटपाथ पर गरीब आदमी बैठे दिखाई देते। हमें बताया गया कि यह फुटपाथ ही इनका घर है। यहीं से ये काम के लिए चले जाते हैं। यहीं पर खाना खा लेते हैं और यहीं सो जाते हैं। मुझे मुंबई में एक ओर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं को भी देखने का मौका मिला तो एक ओर गरीबों की कहानी को भी पढ़ने का मौका मिला। आदमी को अर्थ तो चाहिए, किन्तु वह अन्याय से पैसा न कमाए तो एक समुचित बात हो सकती है। अणुव्रत का संदेश है कि अर्थ और काम—इन दोनों पर धर्म का अंकुश रहना चाहिए।

अमीरी की भी सीमा हो जाए तो अर्थ का संयमन, नियंत्रण हो सकता है। जो व्यक्ति अर्थ-सीमा की बात नहीं करता और येन-केन-प्रकारेण अर्थार्जन करने का प्रयास करता है तो मानो वह अणुव्रत की भावना से बहुत दूर है। खूब पैसा कमाने के लिए जैसे तैसे साधनों को काम में लेना, अनैतिकता को स्वीकार करना, दूसरों को धोखा देना, दिखाना कुछ, देना कुछ, बताना कुछ, करना कुछ। इस प्रकार का जीवन अच्छा जीवन नहीं होता। आदमी को बेईमानी से बचना चाहिए, झूठ से बचना चाहिए। यदि किसी में संकल्प जाग जाए कि मुझे झूठ नहीं बोलना है। भले व्यापार की बात हो, भले परिवार की बात हो, किसी भी क्षेत्र में झूठ नहीं बोलूंगा तो यह कोई असंभव बात नहीं है। संकल्प में इतना बल होता है कि आदमी पहाड़ को भी लांघ देता है। नैतिकता का, सच्चाई का संकल्प आदमी को उन्नत बना सकता है और ब्रह्मचर्य की साधना व संग्रह की सीमा का निर्धारण कर व्यक्ति अणुव्रत के सन्देश को चरितार्थ कर सकता है।

नियम आठवां

८. मैं चुनाव के संबंध मैं अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—परीसह रिउदंता अर्थात् महर्षि लोग पराक्रम करते हैं और वे अपने पराक्रम के द्वारा परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले होते हैं। एक साधु के लिए अपेक्षा है कि वह परीषह विजेता बने। प्रतिकूलताओं को भी सहन कर सके और अनुकूलताओं को भी सहन कर सके। अनुकूलता और प्रतिकूलता में समता भाव रह सके, मानसिक संतुलन रह सके, साधु में ऐसी साधना तो होनी ही चाहिए। पर जब मैं राजनीति पर ध्यान देता हूं तो मेरा ऐसा सोचना है कि कुछ अंशों में यह समता की साधना राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति में भी होनी चाहिए। तब राजनीति अच्छी चल सकेगी। यद्यपि हम लोग तो साधु हैं, राजनीति से दूर हैं। न किसी पार्टी का प्रचार करते हैं, न अमुक को वोट देने का परामर्श देते हैं। हम लोग राजनीति में सक्रिय तो हैं ही नहीं। परन्तु साधु संन्यासी राजनीति को भी मार्गदर्शन देने वाले हो सकते हैं। मेरा तो मानना है कि राजनीति पर नैतिकता का अंकुश या धर्म का अंकुश रहता है तो राजनीति सम्यक्तया संचालित हो सकती है। जहां राजनीति पर धर्म का या नैतिकता का अंकुश न हो, केवल सत्ता का व्यामोह पैदा हो जाए तो उसे राजनीति का दुर्भाग्य मानना चाहिए। मेरा मंतव्य है कि गृहस्थों के लिए राजनीति कोई अस्पृश्य चीज नहीं है। राजनीति भी सेवा का एक अच्छा माध्यम है। परन्तु अपेक्षा यह है कि राजनीति में उतरने वाले व्यक्ति या राजनीति के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति नैतिकता के संकल्प से संपन्न हों।

एक बार परम पूज्य आचार्य तुलसी के पास एक मंत्रीजी आए। उन्होंने कहा—आचार्यजी! मेरे मन में धर्म के प्रति रुचि है, धर्म करना चाहता हूं, पर

समस्या यह है कि मैं बड़ा व्यस्त रहता हूं। धर्म करने के लिए मुझे समय नहीं मिलता। जिस आदमी के सामने बहुत सारे काम, बहुत सारे दायित्व होते हैं, और समय कम होता है तो आदमी बहुत व्यस्त भी हो जाता है, पर मेरा सोचना है कि व्यस्त होना एक बात है और अस्त-व्यस्त होना अलग बात है। व्यस्त होना कोई बुरी बात नहीं है। पर दिमाग अस्त-व्यस्त नहीं होना चाहिए। दिमाग शांत रहना चाहिए। राजनीति में काम करने वाले लोगों के सामने प्रतिकूलताएं भी आ सकती हैं, कठिनाइयां भी आ सकती हैं, कार्य का भार भी हो सकता है, पर इन बातों को लेकर दिमाग अस्त-व्यस्त हो जाए तो यह सफलता का विरोधी तत्त्व है। आदमी मैनेजमेन्ट की प्रविधि को सीख ले कि बहुत काम हो तो उनको किस प्रकार मैनेज किया जाए। यदि मैनेजमेन्ट का तरीका हाथ में आ जाता है और जीवन में कुछ साधना होती है तो आदमी व्यस्तता के समय में भी अपने मन में शांति बनाए रख सकता है।

गुरुदेव तुलसी ने कहा—मंत्रीजी! मैं आपको ऐसा धर्म नहीं बताना चाहूंगा जो आपकी व्यस्तता को और अधिक बढ़ा दे। मैं आपको ऐसा धर्म बताता हूं जिसके लिए आपको समय निकालने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

मंत्रीजी—वह धर्म कौनसा है?

गुरुदेव तुलसी—मंत्रीजी! वह धर्म है नैतिकता का। आप कुछ भी काम करें, उसमें आप नैतिकता को बनाए रखें। यह नैतिकता का संकल्प आपके लिए धर्म हो जाएगा।

अणुव्रत का संदेश है कि आप चाहे किसी की उपासना करो, आप चाहे राम को मानो, चाहे महावीर को मानो, चाहे बुद्ध को मानो और चाहे किसी को न मानो, किन्तु अपने कार्यक्षेत्र में नैतिकता को बनाए रखो। मैं तो यहां तक कहता हूं कि कोई व्यक्ति नास्तिक विचारधारा को मानने वाला हो, जो न परलोक में विश्वास करता, न पुनर्जन्म को मानता, न आत्मा को मानता, ऐसे नास्तिक व्यक्ति से भी मेरा तो कहना है कि वह अणुव्रतों को स्वीकार करे, नैतिकता को स्वीकार करे। चूंकि वह इहलोक को तो मानता है। अतः वर्तमान जीवन को अच्छा बनाने के लिए और दुनिया की भलाई के लिए नैतिकता के रास्ते पर चलना चाहिए।

राजनीति भी ऐसा क्षेत्र है, जिसकी बड़ी उपयोगिता है। राजनीति के बिना तो दुनिया का काम कैसे चलेगा। समाज में कोई प्रमुख होना चाहिए, कोई संचालक होना चाहिए, तब व्यवस्था अच्छी चलती है। जिस समाज में कोई प्रमुख न हो, कोई मार्गदर्शक न हो, कोई नियंता न हो तो मेरा मानना है कि वह समाज के लिए दुर्भाग्य की बात होती है। समाज या राष्ट्र के संचालन के लिए राजनीति तो बहुत जरूरी है। अपेक्षा यह है कि राजनीति में काम करने वाले व्यक्ति योग्य होने चाहिए। हालांकि वोटों से विजेता बनना भी एक अर्हता तो हो जाती है, किन्तु उसके साथ आदमी में कार्य करने की दक्षता भी होनी चाहिए और सबसे बड़ी बात है कि उसमें नैतिकता होनी चाहिए।

भारत एक लोकतांत्रिक प्रणाली से चलने वाला राष्ट्र है। लोकतंत्र में भी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। जनता को भी प्रशिक्षण मिलना चाहिए और देश का संचालन करने वाले व्यक्ति भी प्रशिक्षित होने चाहिए। परम पूज्य आचार्यश्री तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का आठवां नियम है—**मैं चुनाव के संबंध मैं अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।**

लोकतंत्र में चुनाव होता है तब वोटिंग होती है। ज्ञातव्य बात यह है कि वोट आदमी अपने चिन्तन से देता है या प्रलोभन में आकर देता है। जहां वोट देने और लेने का आधार प्रलोभन होता है तो मुझे लगता है यह लोकतंत्र के लिए शुभ शकुन नहीं है, प्रशस्त तरीका नहीं है। लोकतंत्र में जीने वाला व्यक्ति चाहे वोट देने वाला हो या वोट लेने वाला हो, दोनों व्यक्ति प्रशिक्षित हों। वोट देने वाले व्यक्ति के दिमाग में किसी प्रकार का प्रलोभन, भय और आकर्षण नहीं होना चाहिए। राजनीति के आसन पर बैठने वाले लोग योग्यता सम्पन्न होने चाहिए। भारत में अनेक पार्टियां हैं, अनेक दल हैं, पार्टियों का अपना महत्त्व है, किन्तु राष्ट्र सर्वोपरि है। राष्ट्र का स्थान पहले है, पार्टी का स्थान नम्बर दो पर होना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र तो हर पार्टी का है। पार्टी तो अपनी-अपनी हो सकती है पर राष्ट्र तो सबका है। इसलिए राष्ट्रहित को मुख्यता मिलनी चाहिए। राजनीति में रहने वाले लोगों के लिए मेरा परामर्श है कि अपनी पार्टी के बारे में सोचें तो कोई दिक्कत की बात नहीं, परन्तु राष्ट्र को सामने रखकर सोचें। उसकी छत्रछाया में ही पार्टी के हित के बारे में सोचें,

किन्तु राष्ट्रहित को कहीं आंच नहीं आनी चाहिए। राजनेता में यह निष्ठा जागा जाए कि मेरे लिए राष्ट्रहित पहले है, सेवा पहले है। राजनेता यह सोचे कि जो सत्ता मिली है वह मात्र सुख भोगने के लिए नहीं, एशोआराम करने के लिए नहीं, मात्र पैसा इकट्ठा करने के लिए नहीं अपितु सेवा देने के लिए मिली है तो राजनीति में नैतिकता रहने की प्रबल संभावना है और राजनीति में आने वाले व्यक्ति में सेवानिष्ठा कम हो तो फिर नैतिकता में भी कमी आ सकती है। राजनीति में आने वाले व्यक्ति सेवा न करें, जनता की भलाई न करें, तो उनका राजनीति में आना भी व्यर्थ है। जिस राजनेता के जीवन में पैसे का व्यामोह न हो और सेवा की भावना प्रखर हो तो वह राजनीति में नैतिकता को बनाए रख सकता है।

राजनीति कोई अस्पृश्य नहीं होती, वह बड़ी उपयोगी है, किन्तु राजनीति में आने वाले व्यक्ति योग्य होने चाहिए। साफ सुथरी छवि वाले होने चाहिए। उनकी नीति धर्म और नैतिकता से प्रभावित होनी चाहिए। राजनीति और नैतिकता का संगम राष्ट्र के लिए भी सौभाग्य का सूचक बन सकता है।

नियम नौवां

९. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—इहलोग पारत्तहियं जेणं गच्छइ सोग्गइं अर्थात् श्रमण धर्म के द्वारा इहलोक और परलोक में हित होता है। मृत्यु के पश्चात् सुगति प्राप्त होती है।

प्रत्येक आदमी अपना हित चाहता है। हित दो प्रकार का होता है—इहलोक हित और परलोक हित। आदमी इहलोक में भी सुखी रहना चाहता है और परलोक में भी सुखी रहना चाहता है। वह दुर्गति में जाना नहीं चाहता, सुगति में जाना चाहता है। प्रश्न होता है कि आदमी का हित कैसे सध सकता है और आगे सुगति की प्राप्ति कैसे हो सकती है, इस बारे में ज्ञान कहां से मिले? चूंकि सब व्यक्तियों में विशिष्ट ज्ञान नहीं होता और अपनी हर बात का निर्णय ले सके, ऐसी क्षमता भी नहीं होती। तब शास्त्रकार ने मार्गदर्शन देते हुए कहा—बहुस्सुयं पज्जुवासेज्जा, पुच्छेज्जत्थ विणिच्छयं अर्थात् बहुश्रुत पुरुष की उपासना करनी चाहिए और अर्थ विनिश्चय के बारे में जिज्ञासा करनी चाहिए।

वे बहुश्रुत पुरुष जो पथदर्शन प्रदान करें, उस पर मनन करना चाहिए। सबमें विवेक विकसित हो, यह जरूरी नहीं है। यदि स्वयं का विवेक जागृत न हो तो आदमी विवेकशील व्यक्तियों से मार्गदर्शन प्राप्त करे। यदि स्वयं के पास अच्छा ज्ञान हो तब तो व्यक्ति स्वयं के ज्ञान के आधार पर भी निर्णय ले सकता है, पर जब यह लगे कि मेरे से ज्यादा ज्ञानी पुरुष हैं तो फिर दूसरों से परामर्श भी लिया जा सकता है। विवेक भी एक चक्षु है।

एको हि चक्षुरमलं सहजो विवेकः,
तद्वद्भिरेव सह संवसति द्वितीयम्।
एतद् द्वयं भुवि चकास्ति न यस्य सोऽन्धः,
तस्यापमार्गगमने खलु कोपराधः।।

एक चक्षु है विवेक। दूसरा चक्षु है विवेकशील व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना। जिसके पास न खुद का विवेक है और न विवेकशील व्यक्तियों की बात मानी जाती है, वैसा व्यक्ति अपमार्ग में जाए, गलत रास्ते पर जाए तो कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है। प्राकृत का सूक्त है—विवेगे धम्म माहिए यानी विवेक को धर्म कहा गया है। आदमी विवेक से काम करे, यह महत्त्वपूर्ण बात होती है। आदमी बिना सोचे-समझे और बिना विचारे कोई काम कर लेता है तो कई बार बड़ी समस्या पैदा हो जाती है। इसलिए व्यक्ति विवेकपूर्वक काम करे।

परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की नौवीं धारा है—**मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।**

यहां भी विवेक की अपेक्षा रहती है। किसको कुरूढ़ि माना जाए और किसको कुरूढ़ि न माना जाए। समाज के नेतृत्व वर्ग ने जो चिन्तनपूर्वक निर्णय किया है कि यह काम समाज में नहीं होना चाहिए। उसको सम्मान दिया जाना चाहिए क्योंकि संगठन के, समुदाय के निर्णय का बड़ा महत्त्व होता है। जो व्यक्ति किसी समाज या संगठन से बंधा हुआ है, उसका व्यक्तिगत चिन्तन भिन्न हो सकता है, किन्तु उस चिन्तन का इतना महत्त्व नहीं होता जितना समाज के चिन्तन का महत्त्व होता है। मीटिंग हो तब व्यक्ति अपना चिन्तन दे सकता है और वह चिन्तन एक-दूसरे से विरुद्ध भी जा सकता है, किन्तु उसके बाद समाज जो निर्णय कर देता है फिर समाज के सदस्यों के लिए वह निर्णय सम्माननीय होता है। व्यक्तिगत चिन्तन व्यक्ति के पास रहे, समाज का निर्णय हो जाने के बाद क्रियान्विति उसी की होनी चाहिए। यही बात राजनीतिक पार्टी के लिए होती है। एक पार्टी ने जो निर्णय कर लिया, फिर व्यक्तिगत विचार चाहे किसी का कुछ भी हो, जो पार्टी का सदस्य है और पार्टी के बैनर तले काम करता है उसे वही काम करना चाहिए जो पार्टी द्वारा निर्धारित है। पार्टी के बैनर तले अपने व्यक्तिगत निर्णय का

काम नहीं होना चाहिए। जहां पर्सनल लाईफ की बात है, समुदाय का संबंध है वहां व्यक्ति अपने चिन्तन से चले, पर समुदाय के द्वारा जो काम निषिद्ध है, समुदाय के सदस्यों को वह काम नहीं करना चाहिए। व्यक्ति बड़ा नहीं होता, समुदाय बड़ा होता है। व्यक्ति व्यक्ति है, समुदाय समुदाय है। सामुदायिक विचार का महत्त्व होता है। कुरूढ़ि क्या है, इसमें भी समुदाय ने जो चिन्तनपूर्वक फैसला दे दिया कि अमुक काम समाज में नहीं होने चाहिए तो फिर समाज के सदस्यों को उन कामों को छोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

परम पूज्य आचार्य तुलसी ने सन् १९६० में 'नया मोड़' का कार्यक्रम चलाया। इससे तेरापंथ से जुड़े हुए समाज में कुछ नवीनता भी आई। जिनको कुरूढ़ियां माना गया उनसे समाज को काफी अंशों में निजात भी मिली। आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले के तेरापंथ समाज की सामाजिक स्थितियों को देखें और आज की स्थितियों को देखें तो कितना बड़ा अन्तर नजर आ रहा है। उस समय समाज की जो स्थितियां थीं, उनके आलोक में देखें तो आज कितना विकास हो गया है। जिस समय जिस चीज को कुरूढ़ि के रूप में तय कर दिया जाए, समाज को उससे मुक्त रहने का प्रयास करना चाहिए। दहेज प्रथा को भी एक कुरूढ़ि के रूप में देख सकते हैं। कई वर्षों पहले जयपुर में तीन कन्याओं ने आत्महत्या की थी। उनके द्वारा लिखा हुआ पत्र मिला कि हमारे पिताजी की आर्थिक स्थिति सक्षम नहीं है और हमें लगता है कि हमारे पिताजी धर्मसंकट में हैं। चूंकि दहेज के बिना हमारी शादी होना मुश्किल है और दहेज दे सकें, यह स्थिति हमारे पिताजी की है नहीं। इसलिए हम अपने पिता को धर्मसंकट से उबारने के लिए तीनों बहनें आत्महत्या कर रहीं हैं। आत्महत्या का कारण बना दहेज। समाज में ऐसी अनेक स्थितियां हो सकती हैं। जिनके कारण समाज के सामने समस्याएं पैदा हो जाती हैं। कुछ चिन्तनशील व्यक्ति समाज में उभरते हैं। वे समाज के बारे में चिन्तन करते हैं। उनके द्वारा जिन बातों के लिए निषेध किया जाता है, उनको कुरुढ़ि माना जा सकता है, गलत माना जा सकता है और फिर उनको छोड़ने का यथोचित प्रयास भी करना चाहिए।

समाज में शराब, गुटखा आदि कई नशीली चीजें चलती हैं। ऐसी चीजों

के सेवन से बचना चाहिए। जो समाज के लिए हितकर न हो, कल्याणकारी न हो, उनसे समाज को बचने का प्रयास करना चाहिए। बाल विवाह, मृत्युभोज और धार्मिक जगत् में तपस्या का भोज आदि ऐसी अनेक बातें हैं, जिन पर चिन्तन हुआ है और समाज ने ध्यान भी दिया है।

तेरापंथ समाज को देखता हूं तो एक अनुकूल बात यह है कि विशेष रूप से धर्माचार्यों द्वारा समाज को जो दिशानिर्देश दिया जाता है, मार्गदर्शन दिया जाता है, समझाया जाता है तो समाज के लोग उस पर ध्यान देते हैं। मात्र धर्मगुरु ही नहीं, समाज के जो अधिकारी हैं, नेतृत्व वर्ग है, वह भी जो अच्छी बात बताए, उस पर समाज को ध्यान देना चाहिए, क्योंकि समाज का महत्त्व तब है जब समाज अनुशासित हो, सुशृंखल हो। यदि समाज में अनुशासन है, सुशृंखलता है तो समाज आगे बढ़ सकेगा, समाज में शांति रह सकेगी और समाज अनेक समस्याओं से बच सकेगा। परम पूज्य आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से जनता को पथदर्शन देने का प्रयास किया है।

एक जमाना था जब जिन बहनों का पति-वियोग हो जाता, वे घर के कोने में बैठी रहतीं या घर में बंद-सी हो जाती थीं। एक बार गुरुदेव तुलसी कहीं पधार रहे थे। किसी भाई ने कहा—गुरुदेव! हमारे घर में माताजी हैं। उनको दर्शन देने की कृपा करें।

आचार्य तुलसी—क्या वे अस्वस्थ हैं?

भाई—नहीं! वे अस्वस्थ तो नहीं हैं, किन्तु वे घर से बाहर नहीं जाते, क्योंकि उनके पति का वियोग हो गया है। इसलिए आपको अन्दर चलना पड़ेगा।

आचार्य तुलसी—कोई बीमार हो तो मैं एक बार नहीं तीन बार दर्शन देने के लिए आ जाऊंगा, पर रूढ़ि को प्रश्रय देने के लिए मैं अन्दर नहीं आऊंगा। आप उनको बाहर दर्शन कराओ। आखिर बहन ने बाहर आकर दर्शन किए। इस प्रकार आचार्य तुलसी ने कहीं कड़ाई से काम लिया और कहीं उपदेश भी दिया। इससे समाज में कितना परिवर्तन आ गया।

उस समय विधवा को अपशकुन के रूप में माना जाता था। एक बार गुरुदेव लाडनूं में सूरजमलजी बैंगानी के मकान में विराजमान थे। वहां से

प्रस्थान करते समय पूछा—मांजी कहां गईं। तब बताया गया कि मांजी तो दूर चली गई ताकि गुरुदेव विहार करें तो अपशकुन न हो जाए।

गुरुदेव ने कहा—मैं तो आज मांजी का शकुन लेकर विहार करूंगा। जिनको अपशकुन के रूप में देखा जाता था, गुरुदेव ने उनको शकुन के रूप में स्वीकार किया। गुरुदेव तुलसी का अपना चिन्तन था, अपना क्रांतिकारी दर्शन था। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से संदेश दिया कि कुरूढ़ियों को महत्त्व न दिया जाए, जो गलत रूढ़ियां हैं, अहितकर हैं, हितावह नहीं हैं, उनको छोड़ा जाए, जिससे आदमी अच्छा जीवन जी सके।

नियम दसवां

१०. मैं व्यसनमुक्त जीवन जीऊंगा।

● मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि तथा मांस, अण्डा, मछली आदि मांसाहार का सेवन नहीं करूंगा।

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं की चूलिका में कहा गया है—

जत्थेव पासे कई दुप्पउत्तं, काएण वाया अदुमाणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा, आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं।।

जहां कहीं भी मन, वचन और काया को दुष्प्रवृत्त होता हुआ देखे तो धीर साधु वहीं संभल जाए। जैसे जातिमान अश्व लगाम को खींचते ही संभल जाता है।

हमारे जीवन में प्रवृत्ति के तीन साधन हैं—शरीर, वाणी और मन। हम शरीर से चलना, खाना, पीना आदि प्रवृत्तियां करते हैं। वाणी से भाषण करते हैं और मन से स्मृति, कल्पना, चिन्तन करते हैं। ये तीन योग हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। हमारे जीवन में पूर्णतया प्रवृत्तिमुक्तता प्रायः नहीं होती है। जैन तत्त्वविद्या के अनुसार चौदह प्रकार के गुणस्थान होते हैं। चौदहवें गुणस्थान का नाम है अयोगिकेवली गुणस्थान। उस गुणस्थान पर जो मनुष्य आरूढ़ हो जाता है वह कोई प्रवृत्ति नहीं करता। वहां न शरीर की संचेष्टा होती है, न वाणी से भाषण होता है और न मन की प्रवृत्ति होती है। शेष गुणस्थानों में तो प्रवृत्ति होती ही रहती है, किन्तु यह भी एक सिद्धांत है कि एक समय में दो योगों की प्रवृत्ति नहीं होती। एक समय में या तो काययोग रहेगा या वाक्योग रहेगा या मनोयोग रहेगा। तीनों योगों के साथ एक साथ एक समय में हमारी चेतना संपृक्त नहीं होती है। स्थूल दृष्टि से

लगता है कि एक साथ कई काम हो रहे हैं। जैसे आदमी चल भी रहा है, सोच भी रहा है और बोल भी रहा है। परन्तु सिद्धांत पर ध्यान दिया जाए तो एक समय में हमारी चेतना युगपत दो के साथ संपृक्त नहीं होती। आदमी को जब लगे कि दुष्प्रवृत्ति हो रही है, शरीर से गलत काम किया जा रहा है। किसी को पीड़ा पहुंचाई जा रही है, किसी का बुरा किया जा रहा है, प्रमाद किया जा रहा है तो आदमी को संभलना चाहिए कि ऐसा काम मैं न करूं। यदि वाणी का दुष्प्रयोग हो जाए, वाणी से अयथार्थ भाषा बोली जाए, कटु भाषा बोली जाए, सावद्य भाषा बोली जाए तो साधक जागरूक बन जाए कि मैं अपनी वाणी को दुष्प्रयोग से बचाऊं। यदि शरीर से गलत काम नहीं हो रहा है, वाणी का दुष्प्रयोग नहीं हो रहा है, परन्तु मन में भी दुर्विचार आ रहे हैं तो भी साधक जागरूक हो जाए कि मेरे मन में दुर्विचार क्यों आ रहे हैं। वह विचार को देखना शुरू कर दे। ज्योंही विचार को देखना शुरू करेगा, विचारों पर नियंत्रण होना शुरू हो जाएगा। साधक निर्विचारता की दिशा में आगे बढ़े, अनपेक्षित विचारों के प्रवाह में न बहे। निर्विचारता का अभ्यास साधना का एक उत्तम प्रयोग है। यद्यपि निर्विचारता तो बहुत आगे की बात है, व्यक्ति कम से कम दुर्विचार तो न करे। कोई व्यक्ति निर्विचार होकर बैठ जाए तो दुनिया का व्यवहार कैसे चलेगा। एकान्त में साधना करना हो तो ठीक है किन्तु व्यवहार की दुनिया में जीने वाला व्यक्ति इतना निर्विचार हो जाए कि मन में कोई चिन्तन ही नहीं आए तो आदमी काम कैसे करेगा। निर्विचारता तो कुछ समय की साधना के रूप में अभ्यस्त हो सकती है, वह हमेशा व्यवहार में जीने वाले के लिए करणीय नहीं है। अनावश्यक विचार न आए, दुर्विचार न आए, इस पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का दसवां नियम है—**मैं व्यसनमुक्त जीवन जीऊंगा।**

● मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि तथा मांस, अण्डा, मछली आदि मांसाहार का सेवन नहीं करूंगा।

अणुव्रत ने नशामुक्ति का संदेश दिया। गुरुदेव तुलसी ने कितने-कितने लोगों को नशामुक्ति का संकल्प कराया। यद्यपि अब तो धीरे-धीरे वे लोग

कम हो रहे हैं, किन्तु आज भी कहीं-कहीं ऐसे लोग मिलते हैं जिन्होंने गुरुदेव तुलसी से अणुव्रत को या नशामुक्ति को स्वीकार किया था। परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने करीब सात वर्षों तक अहिंसा यात्रा की। उस यात्रा के दौरान न जाने कितनों ने नशे का परित्याग किया होगा। जीवन को अच्छा बनाने के लिए व्यसन-मुक्तता की अपेक्षा होती है। जो आदमी नशा करता है, उसे नशे के परिणाम के बारे में भी सोचना चाहिए। किसी ने ठीक कहा है—जो मद्यपायी लोग होते हैं, उनका चित्त भ्रान्त हो जाता है। जिसका चित्त भ्रान्त हो जाता है वह व्यक्ति पाप में/अपराध में चला जाता है। पाप/अपराध करने वाला व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त होता है। इसलिए न तो शराब पीनी चाहिए और न दूसरों को पिलानी चाहिए। खराब चीज की मनुहार भी क्यों करें। नशे से अनेक प्रकार के नुकसान संभव हैं। नशे से आर्थिक नुकसान हो सकता है। गरीब आदमी श्रम करके पैसा कमाए और फिर उस पैसे को शराब आदि में गंवाए तो वे गरीबी के चंगुल से छुटकारा कैसे पा सकते हैं? उनकी गरीबी कैसे दूर होगी? इस प्रकार नशे से आर्थिक कठिनाई पैदा हो सकती है। नशे से शारीरिक बीमारियां भी पैदा हो सकती हैं। नशा करने वाले की मानसिकता भी कुछ विकृत हो सकती है। नशे में धुत आदमी मारपीट में उतर सकता है। क्या करना, क्या नहीं करना, इस सुधबुध को भी खो बैठता है। नशे के द्वारा एक जीवन का दुरुपयोग-सा हो जाता है। नशा मानसिक दृष्टि से भी अहितार्थ बन सकता है। आत्मा की दृष्टि से देखें तो पदार्थों के प्रति जो आसक्ति है और अभोग्य पदार्थों के प्रति जो आसक्ति है, वह अध्यात्म की दृष्टि से भी नुकसान देने वाली है। थोड़े लाभ के लिए ज्यादा नुकसान उठाना बुद्धिमत्ता की बात नहीं होती। नुकसान और लाभ के बारे में चिन्तन किया जाए तो आदमी के सामने नशे के परिणाम भी प्रस्तुत हो सकते हैं और आदमी चिन्तनपूर्वक नशे का परित्याग भी कर सकता है। कई बार आदमी नशे को बुरा मान लेने पर भी उसे छोड़ नहीं सकता, क्योंकि वह आदत से लाचार बन जाता है। कभी-कभी विवेक कहता है कि नशा नहीं करना चाहिए पर मोह कहता है कि नशा करो और आदमी मोह की बात स्वीकार कर लेता है। सबसे अच्छी बात तो यह है कि नशा जीवन में कभी आए ही नहीं। नशीले पदार्थों का आदमी मुंह से स्पर्श ही न करे, हाथ से भी स्पर्श न करे।

दुर्भाग्य से नशा लग जाए तो फिर उसे छोड़ने का प्रयास करना चाहिए। आदमी का संकल्प जाग जाए तो फिर नशे को भी वह तिलांजलि दे सकता है। कोई व्यक्ति चाहे किसी भी सम्प्रदाय को मानने वाला हो, चाहे नास्तिक आदमी हो, उसको भी नशा मुक्ति की बात पर ध्यान देना चाहिए। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी ने जनता को संयम, नैतिकता और अहिंसा का ऐसा संदेश दिया, जिसे आदमी स्वीकार कर ले तो अच्छे समाज का निर्माण हो सकता है। व्यक्ति-परिवर्तन भी अच्छा है और सामाजिक स्तर पर भी परिवर्तन अच्छा है। कभी-कभी व्यक्ति-व्यक्ति को समझाना कठिन होता है, पर सामाजिक स्तर पर कोई मर्यादा बन जाए तो फिर उसका पालन किया जा सकता है। चाहे मन से करे या बिना मन करे, किन्तु अच्छी बात का समाज पालन करता है। हृदय परिवर्तन की बात भी ठीक है और साथ में सामाजिक स्तर पर भी कोई व्यवस्था हो जाए तो वह भी काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। किसी भी अच्छे तरीके से समाज संयम की दिशा में और नशामुक्ति की दिशा में आगे बढ़े, यह वांछनीय है।

नियम ग्यारहवां

११. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।

- *हरे भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।*
- *पानी, बिजली आदि का अपव्यय नहीं करूंगा।*

आर्हत् वाङ्मय के प्रतिष्ठित आगम दसवेआलियं में कहा गया—

तणरुक्खं न छिंदेज्जा फलं मूलं व कस्सई।
आमगं विविहं बीयं मणसा वि न पत्थए।।

मुनि तृण, वृक्ष तथा किसी भी (वृक्ष आदि का) फल या मूल का छेदन न करे और विविध प्रकार के सचित्त बीजों की मन से भी इच्छा न करे।

साधु के लिए सर्वथा प्राणातिपात विरमण व्रत अथवा अहिंसा महाव्रत निर्दिष्ट है। जैन आगमों का अध्ययन करने से इस बात की जानकारी प्राप्त हो सकती है कि साधु अहिंसा के प्रति कितना जागरूक रहता है। साधु के लिए वृक्ष को काटना तो बहुत दूर की बात है, सामान्यतया गोचरी आदि के लिए जाते समय उसे हरियाली पर पैर भी नहीं रखना। साधु हर किसी प्रकार का पानी काम में नहीं ले सकता। निर्जीव जल ही साधु के लिए उपभोग्य होता है। जैन शास्त्रों में बताया गया है कि पानी भी सजीव होता है, मिट्टी भी सजीव होती है, अग्नि भी सजीव होती है, हवा भी सजीव होती है और पेड़-पौधे आदि तो सजीव होते ही हैं। अन्य बड़े प्राणी भी सजीव होते ही हैं। जैन साधना पद्धति में छोटे-छोटे जीवों की अहिंसा पर भी ध्यान दिया गया है। पानी के संयम के लिए साधु-समाज को भी ध्यान देना चाहिए और विशेष रूप से गृहस्थ वर्ग को ध्यान देना चाहिए। गृहस्थ लोग स्नान करते हैं तब यह ध्यान देना चाहिए कि स्नान में आवश्यक पानी ही लगा है या अनावश्यक पानी भी बह जाता है। नल के नीचे बैठकर स्नान करने वाले को यह सोचना

चाहिए कि नल से गिरने वाले पानी का सम्यक् उपयोग होता है या नहीं। अगर संकल्प कर लिया जाता है कि नल के नीचे बैठकर स्नान नहीं करेंगे, बाल्टी आदि में लेकर ही करेंगे तो पानी का संयम हो सकता है। मुझे तो कभी-कभी लगता है कि अगर काम करने का तरीका ठीक हो तो थोड़े पानी से भी अच्छा काम किया जा सकता है। पानी का अपव्यय नहीं होना चाहिए, इस बात के प्रति साधु-साध्वियों में भी जागरूकता रहनी चाहिए और गृहस्थों में तो और ज्यादा जागरूकता रहनी चाहिए। जैन सिद्धान्त तो यह बताता है कि पानी की एक बूंद में भी असंख्य जीव होते हैं। पानी का संयम करने से उन जीवों के प्रति भी दया पलती है, अहिंसा और संयम की साधना हो जाती है।

परम पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा संप्रवर्तित अणुव्रत की आचार संहिता का ग्यारहवां नियम है—**मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।**

- हरे भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
- पानी, बिजली आदि का अपव्यय नहीं करूंगा।

पर्यावरण बाहर का भी होता है और एक पर्यावरण हमारे भीतर में भी होता है। बाहर का पर्यावरण प्रदूषित हो सकता है तो हमारे भीतर का पर्यावरण भी प्रदूषण हो सकता है। जिस आदमी के भीतर ईर्ष्या की भावना है, द्वेष की भावना है, हिंसा की भावना है, आक्रोश, आवेश ज्यादा है तो समझना चाहिए कि भीतर का पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। अगर भीतर का पर्यावरण अच्छा रहेगा तो बाहर भी हिंसा को कम मौका मिलेगा। जो हिंसा बाहर होती है वह बाहर तो बाद में प्रकट होती है पहले आदमी के दिमाग में पैदा होती है, भावों में पैदा होती है। अगर भावों में, दिमाग में, संस्कारों में हिंसा न उभरे तो बाहर की हिंसा भी कम होने की संभावना रहती है। हम लोग गृहस्थों को जो तेरापंथ की दीक्षा देते हैं उसे गुरुधारणा कहा जाता है। उसमें एक नियम कराया जाता है कि मैं हरे-भरे बड़े वृक्ष को नहीं काटूंगा। यह एक तरह से अनायास ही पर्यावरण शुद्धि की बात हो जाती है। जहां शुद्ध पर्यावरण होता है, वहां साधना भी अच्छे ढंग से हो सकती है। चित्त में

प्रसन्नता की स्थिति बन सकती है, स्वास्थ्य की अनुकूलता में निमित्त बन सकता है। भीतर का पर्यावरण अच्छा रहता है तो दिमाग शांत रहता है, चित्तसमाधि रहती है। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत का प्रकल्प प्रस्तुत किया और परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने प्रेक्षाध्यान का प्रकल्प प्रस्तुत किया। अणुव्रत के साथ ध्यान जुड़ जाता है तो साधना ज्यादा पुष्ट हो सकती है। अणुव्रत के नियमों का पालन हों और साथ में ध्यान आदि के प्रयोग हों तो साधना में सर्वांगीणता आ सकती है। प्रेक्षाध्यान में निर्देश दिया जाता है—प्रियता और अप्रियता के बिना केवल देखो। यह प्रियता और अप्रियता को छोड़ना, समता का अभ्यास करना भीतर के पर्यावरण को शुद्ध बनाने का उपक्रम होता है। आदमी को भीतर के पर्यावरण-शुद्धि पर तो ध्यान देना ही चाहिए, किन्तु बाहर के पर्यावरण-शुद्धि के लिए अपेक्षा रहती है कि आदमी यह सोचे कि मेरी असावधानी से किसी के लिए समस्या पैदा न हो जाए। पर्यावरण की दृष्टि से संयम बड़ा सहायक तत्त्व है। हम दैनिक व्यवहारों में संयम का ध्यान दें। जैसे आप घर से बाहर जा रहे हैं। घर में पीछे कोई नहीं है, फिर भी घर में लाइट जल रही है, पंखा चल रहा है। वह विद्युत् का व्यर्थ उपयोग है, विद्युत् का अपव्यय है। जब घर में कोई है ही नहीं तो कमरे आदि में पंखा क्यों चले, लाइट क्यों जले? यानी अनावश्यक विद्युत् आदि का प्रयोग-उपयोग नहीं होना चाहिए। आवश्यकता से करना पड़े वह तो एक आवश्यकता की पूर्ति है। कम से कम अनावश्यक विद्युत् का प्रयोग न करने से हिंसा से बचाव भी हो जाता है और विद्युत् के अपव्यय से भी बचाव हो जाता है। यों छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दिया जाए तो संयम का अभ्यास पुष्ट हो सकता है। पानी के संयम पर भी ध्यान देना चाहिए। प्राचीन काल में हमारे साधु-साध्वियों को तो कभी-कभी पानी पीने का भी संयम करना पड़ता था। पानी की अल्पता के समय पानी भी माप-माप कर पीया जाता था। इतिहास बताता है कि मुनिश्री स्वरूपचंदजी स्वामी ने पानी की निर्धारित व्यवस्था का अतिक्रमण करने वाले साधु का संघ से संबंध विच्छेद कर दिया। हालांकि आजकल तो प्रायः ऐसी स्थिति नहीं बनती कि पानी पीने का संयम करने के लिए हमें कहना पड़े। वस्त्र-प्रक्षालन के लिए तो फिर भी कभी-कभी व्यवस्था करनी पड़ती है। आदमी पानी का संयम करे, विद्युत्

का संयम करे, पेड़-पौधों को काटने में भी संयम रखे। हालांकि गृहस्थ लोगों के लिए कई बार मजबूरी हो जाती है कि पेड़ काटने के सिवाय और कोई उपाय बचता ही नहीं है। वहां तो पेड़ काटना पड़ता है, पर जहां तक संभव हो सके हरे-भरे मोटे पेड़ों को काटने से बचना चाहिए। पेड़ों में भी तो जीव है। जैन आगमों के आयारो नामक सूत्र में तो विशेष रूप से निर्देश मिलता है कि मनुष्य और वनस्पति में कितनी समानता है। वहां बताया गया है–

इमंपि जाइधम्मयं, एयंपि जाइधम्मयं।
इमंपि बुड्ढिधम्मयं, एयंपि बुड्ढिधम्मयं।
इमंपि चितमंतयं, एयंपि चितमंतयं।
इमंपि छिन्नं मिलाति, एयंपि छिन्नं मिलाति।
इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं।
इमंपि अणिच्चयं, एयंपि अणिच्चयं।
इमंपि असासयं, एयंपि असासयं।
इमंपि चयावचइयं, एयंपि चयावचइयं।
इमंपि विपरिणामधम्मयं, एयंपि विपरिणामधम्मयं।।११३।।

यह मनुष्य शरीर भी जन्मता है, यह वनस्पति भी जन्मती है। यह मनुष्य शरीर भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है। यह मनुष्य शरीर भी चैतन्ययुक्त है, यह वनस्पति भी चैतन्ययुक्त है। यह मनुष्य शरीर भी छिन्न होने पर म्लान होता है, यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है। यह शरीर भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है। यह मनुष्य शरीर भी अनित्य है, यह वनस्पति भी अनित्य है। यह मनुष्य शरीर भी अशाश्वत है, यह वनस्पति भी अशाश्वत है। यह मनुष्य शरीर भी उपचित और अपचित होता है, यह वनस्पति भी उपचित और अपचित होती है। यह मनुष्य-शरीर भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है, यह वनस्पति भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होती है।

वृक्ष को तो पुत्र के समान माना गया है। वृक्ष का संस्कृत में रूप बनता है वृक्ष और प्राकृत में बनता है वक्षो। वक्षो के दो रूप बनते हैं–वृक्षः और

वत्सः। वृक्ष का अर्थ है पेड़ और वत्स का अर्थ है पुत्र। जैसे आदमी बेटे से प्यार करता है वैसे पेड़ से भी इस रूप में प्यार करे कि पेड़ को कभी काटे नहीं। इस प्रकार वनस्पति के संयम के प्रति भी जागरूकता रहनी चाहिए। अणुव्रत तो संयम की साधना का प्रयोग है। संयमः खलु जीवनम् अर्थात् संयम ही जीवन है और अति असंयम एक प्रकार की मृत्यु है। अच्छा जीवन जीने के लिए संयम की साधना अपेक्षित होती है और संयम की साधना के साथ विवेक जुड़ जाए तो सोने में सुहागा जैसी बात हो जाती है। विवेक बड़ा उपकारी तत्त्व होता है। आदमी विवेक रखे कि कितना व कौनसा कार्य मेरे लिए आवश्यक है और कौनसा कार्य अनावश्यक है। आदमी आवश्यक काम करे अनावश्यक काम नहीं करे। आदमी अनावश्यक असंयम से बचता है तो वह स्वयं की आत्मा का भला करता है। चूंकि आत्मा की सुरक्षा संयम से होती है, अहिंसा से होती है।

हमारा जीवन दो तत्त्वों का योग है—चेतना और शरीर। हम शरीर के लिए कितना करते हैं—खाना, पीना, सोना, नहाना, चिकित्सा आदि-आदि। वे काम शरीर के लिए आवश्यक भी हैं किन्तु हम आत्मा को भी भूलें नहीं। यह शरीर तो इस जीवन तक सीमित है, पर आत्मा को तो स्थायी माना गया है। आत्मा आगे भी रहने वाली है। एक स्थायी तत्त्व है और दूसरा अस्थायी तत्त्व है। हम अस्थायी का ध्यान देते हैं तो स्थायी के प्रति भी जागरूकता रहनी चाहिए। हमारा स्थायी तत्त्व भी सुरक्षित रहे। उसके लिए अपेक्षा है आदमी धर्म की साधना करे, अहिंसा, संयम और तपस्या है तो मानना चाहिए उसके जीवन में धर्म आ गया है। धर्म एक ऐसा तत्त्व है जिससे आत्मा का कल्याण भी होता है और बाहर की कठिनाइयां भी दूर होती है। धर्म आत्मोत्थानकारक भी है और व्यावहारिक दृष्टि से भी श्रेयस्कर है। धर्म बड़ा वैज्ञानिक है और युक्तिसंगत है। अगर आदमी समझपूर्वक धर्म की आराधना करता है तो उस धर्म का अधिक महत्त्व होता है। आदमी अहिंसा के प्रति जागरूक बने, संयम की साधना के प्रति निष्ठावान बने और फिर तप की आराधना करने का प्रयास करे तो पर्यावरण की कुछ समस्या तो स्वतः समाहित हो सकती है।

आचार्य महाश्रमण : एक परिचय

आचार्य महाश्रमण उन महान संत-विचारकों में से एक हैं जिन्होंने आत्मा के दर्शन को न केवल व्याख्यायित किया है, अपितु उसे जीया भी है। वे जन्मजात प्रतिभा के धनी, सूक्ष्मद्रष्टा, प्रौढ़ चिंतक एवं कठोर पुरुषार्थी हैं। उनकी प्रज्ञा निर्मल एवं प्रशासनिक सूझबूझ बेजोड़ है। एक विशुद्ध पवित्र आत्मा जिनके कार्यों में करुणा, परोपकारिता एवं मानवता के दर्शन होते हैं तथा जिनकी विनम्रता, सरलता, साधना एवं ज्ञान की प्रौढ़ता भारतीय ऋषि परम्परा की संवाहक दृष्टिगोचर होती है।

१३ मई, १९६२ को राजस्थान के एक कस्बे सरदारशहर में जन्मे एवं ५ मई, १९७४ को दीक्षित हुए आचार्य महाश्रमण अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ की परम्परा में तेरापंथ धर्मसंघ के ११वें आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति और मानवीय चरित्र के उत्थान के लिए समर्पित आचार्य महाश्रमण आर्षवाणी के साथ अध्यात्म एवं नैतिकता, अनुकंपा और परोपकार, शांति और सौहार्द जैसे मानवीय मूल्यों एवं विषयों के प्रखर वक्ता हैं।

वे एक साहित्यकार, परिव्राजक, समाज सुधारक एवं अहिंसा के व्याख्याकार हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के साथ अहिंसा यात्रा के अनन्तर आपने लाखों ग्रामवासियों एवं श्रद्धालुओं को नैतिक मूल्यों के विकास, साम्प्रदायिक सौहार्द, मानवीय एकता एवं अहिंसक चेतना के जागरण के लिए अभिप्रेरित किया।

'चरैवेति-चरैवेति' इस सूक्त को धारणकर वे लाखों-लाखों लोगों को नैतिक जीवन जीने एवं अहिंसात्मक जीवनशैली की प्रेरणा देने के लिए पदयात्राएं कर रहे हैं।

अत्यन्त विनयशील आचार्य महाश्रमण अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान एवं अहिंसा प्रशिक्षण जैसे मानवोपयोगी आयामों के लिए कार्य कर तनाव, अशांति तथा हिंसा से आक्रांत विश्व को शांति एवं संयमपूर्ण जीवन का संदेश दे रहे हैं।

शांत एवं मृदु व्यवहार से संवृत्त, आकांक्षा–स्पृहा से विरक्त एवं जनकल्याण के लिए समर्पित युवा मनीषी आचार्य महाश्रमण भारतीय संत परम्परा के गौरव पुरुष हैं।

आचार्यश्री महाश्रमण की प्रमुख कृतियां

आओ हम जीना सीखें

जीता हर कोई है, किन्तु कलापूर्ण जीना कोई-कोई जानता है। प्रस्तुत पुस्तक में आचार्यश्री महाश्रमण ने कलात्मक जीवन के सूत्रों को प्रकाशित करते हुए जीवन की प्रत्येक क्रिया का व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया है। वस्तुतः यह कृति 'कैसे जीएं' इस प्रश्न का सटीक समाधान है।

क्या कहता है जैन वाङ्मय

इस पुस्तक में जैन शास्त्रों में उपलब्ध सफलता के सूत्रों में से चुनिंदा मोतियों को पिरोया गया है। प्रस्तुत कृति आचार्यश्री महाश्रमण के हृदयस्पर्शी प्रवचनों का महत्त्वपूर्ण संग्रह है।

दुःख मुक्ति का मार्ग

आचार्यश्री महाश्रमण ने इस पुस्तक में साधना के रहस्यों को प्रस्तुत किया है। सुख, शांति और आनंद की प्राप्ति में यह कृति मार्गदर्शक की भूमिका अदा करती है।

संवाद भगवान से

प्रतिष्ठित जैनागम उत्तराध्ययन के २९वें अध्ययन पर आधारित इस पुस्तक में भगवान महावीर और उनके प्रमुख शिष्य गौतम के रोचक संवाद के माध्यम से मन में संशय पैदा करने वाले प्रश्नों को विस्तृत रूप में समाहित किया गया है। यह कृति दो भागों में उपलब्ध है।

महात्मा महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ तेरापंथ के आचार्य, अनुशास्ता, साहित्यकार और प्रवचनकार थे। इन सबसे पहले वे एक सन्त थे, महात्मा थे, उनकी आत्मा में महानता थी। उनके उत्तराधिकारी आचार्यश्री महाश्रमण ने उन्हें नजदीकी से देखा और जाना। प्रस्तुत पुस्तक में श्री महाप्रज्ञ के नौ दशकों के इतिहास और रहस्यों को उजागर किया गया है।

रोज की एक सलाह

लघु आकार में प्रस्तुत यह पुस्तक 'गागर में सागर' उक्ति को चरितार्थ करती है। आचार्य महाश्रमण द्वारा सूक्तियों में दी गई 'रोज की एक सलाह' हर व्यक्ति के लिए प्रतिदिन की पर्याप्त खुराक है। सदा साथ रखी जा सकने वाली यह कृति न केवल सफलता की प्राप्ति में सहायक है, अपितु व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में भी इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

१. सुखी बनो २. सम्पन्न बनो ३. विजयी बनो

आचार्य महाश्रमण ने प्रस्तुत तीनों पुस्तकों में श्रीमद्भगवद्गीता और उत्तराध्ययन की तुलनात्मक विवेचना करते हुए साधक का सुन्दर पथदर्शन किया है। तीन भागों में उपलब्ध यह ग्रन्थमाला जहां दो महनीय ग्रन्थों को युगीन रूप में प्रस्तुति देती है, वहीं अध्यात्मरसिकों के लिए पोषक का कार्य भी करती है।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं

आचार्यश्री महाश्रमण की प्रस्तुत पुस्तक में जैन तत्त्वज्ञान, साधना के प्रयोगों, महापुरुषों और उनके अवदानों आदि विविध विषयों से संबद्ध उपयोगी और प्रेरणास्पद सामग्री संजोई गई है।

शिलान्यास धर्म का

धर्म का आदि बिन्दु है—सम्यक्त्व। आचार्य महाश्रमण की प्रस्तुत कृति सम्यक्त्व, उसके लक्षण, दूषण, भूषण तथा देव, गुरु, धर्म आदि विषयों पर आधारित प्रवचनों और प्रश्नोत्तरों का संग्रह है। जैन अनुयायियों की आस्था के दृढ़ीकरण में यह कृति सहायक की भूमिका अदा करती है।

● प्राप्ति स्थान ●

जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६, जिला : नागौर (राज.)

फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१

ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

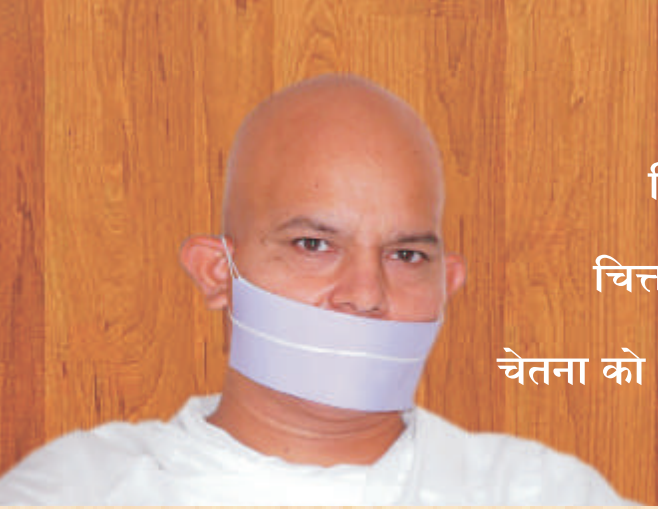

जिनका चिन्तन
चित्त को प्रसन्नता और
चेतना को पवित्रता प्रदान करता है।

इसी पुस्तक से...

- अणुव्रत आचारसंहिता का कथन है—प्रामाणिक और ईमानदार बनो। ईमानदारी किसके लिए उपयोगी नहीं है? व्यापारी हो, मजदूर हो, राजनीति के क्षेत्र का आदमी हो, सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने वाला व्यक्ति हो, डॉक्टर, वकील कोई भी हो, नैतिकता सबके लिए अपेक्षित है। इसलिए अणुव्रत की आचारसंहिता सबके लिए हितावह है। नशामुक्ति की बात, अहिंसा की बात, नैतिकता की बात, इन्द्रिय-संयम की बात, संग्रह के सीमा की बात सबके लिए अच्छी है।

- अच्छा आदमी बनने के लिए अणुव्रत के छोटे-छोटे व्रतों को स्वीकार करना अपेक्षित है। व्यक्ति सुधार से ही समाज सुधार और राष्ट्र सुधार हो सकता है। अणुव्रत रूपी कल्पवृक्ष की छांव में बैठने से पाप से निजात मिल सकेगी और अच्छा जीवन जीने का मौका मिल सकेगा।

- अणुव्रत का संदेश है कि आप चाहे किसी की उपासना करो, आप चाहे राम को मानो, चाहे महावीर को मानो, चाहे बुद्ध को मानो और चाहे किसी को न मानो, किन्तु अपने कार्यक्षेत्र में नैतिकता को बनाए रखो।

ISBN 81-7195-267-4

₹ 30/-